प्रकाशक—
कोठारी जमनालाल,
न० ३, मल्लिक स्ट्रीट,
कलकत्ता।



मुद्रक—
डि, एन, दत्त।
ज्ञानोदय प्रेस,
४१, बी, मजदुलाल स्ट्रीट कलकत्ता।



॥ बाबू रावतमलजी ॥

॥ हाकिमकोठारी ॥

Mohila Press, Cal.



॥ जंगमयुगप्रधान भट्टारक खरतरगच्छाचार्य ॥
॥ श्री१००८श्रीजिनचारित्रसूरिजी महाराज ॥
॥ व्याख्यानवाचस्पती ॥

Mohila Press, Cal.



समर्पणम् ।

प्रातः स्मरणीय, शान्तमूर्त्ति, जङ्गमयुगप्रधान, व्याख्यान-
वाचस्पति, वृहत्खरतरगच्छाचार्य भट्टारक
श्रीश्रीश्री १००८ श्रीजिन चारित्र
सूरीश्वर जी महाराज,
आपकी सकल, शास्त्रीय; विषयों में अप्रतिम निष्पातता, उच्चकोटि
की क्षमा-शीलता, निरुपम गंभीरता, असाधारण निःस्पृ-
हता, अलौकिक जितेन्द्रियता, निरंतर परोपकारैक-तत्प
रता, जिन-वाणी के रहस्य को हृदयङ्गम करानेकी
अनुपम और निष्पक्षपात उपदेश-शैली, जिन-
शासन की प्रभावना के लिए अपूर्व उत्साह के
साथ अनवरत परिश्रम, इत्यादि २ आपके
अनेक उत्तमोत्तम गुणों से आकृष्ट होकर यह
लघु पुस्तक आपके ही चरण-कमलों
में सादर, सविनय समर्पित
करके कृतार्थ होता हूं ।

चरण-सेवक,

कोठारी जमनालाल ।

भूमिका ।

जैन सम्प्रदायमें श्रावकों (गृहस्थ) के नित्यकृत्य अर्थात दर्शन, पूजा, सामायिक आदि विषयके अनेक बड़े२ ग्रन्थ हस्तलिखित तथा छापे हुए हैं; तथापि नित्यक्रिया यथार्थविधि युक्त करनेकी प्रवृति प्रायः नहीके बराबर है। गडरिकाप्रवाहसे विधि अविधि का किञ्चित् भी ख्याल न करके जैसा जिसके दिलमें आया करनेमें प्रवृत्त हो जाते हैं परन्तु यह उपयोग किञ्चित् मात्र भी नहीं रखते कि अविधि आशातना करनेसे जिस लाभके वास्ते करते हैं वह लाभतों होना दूर रहा उल्टी हानि होती है अर्थात् अशुभ कर्मों का बन्ध होता है।

सिद्धान्तोंमें श्रीवीतराग सर्वज्ञदेवने तथा प्रकरणोंमें पूर्वाचार्यमहाराजोंने खुली तौरसे उपदेश दिया है कि—हे भव्य-जीवो जो जो धर्मक्रिया करो सो विधियुक्त करो, जिससे आत्माका कल्याण होकर परम्परासे मोक्षप्राप्त होय; प्रथमसे ही विधि उनसे विनयबहुमानयुक्त होकर सीखो जो सद्गुरुपरम्परासे सिद्धान्तका रहस्य जाननेवाले आत्मअनुभवके रसिया हैं; और जबतक विधि से क्रिया नहीं बने तब तक अन्तःकरणसे अविधिका पश्चाताप करके विधिमें प्रवेशकरनेकी प्रबल अभिलाषा रक्खो। परन्तु ऐसा मत करो कि अविधिकी ही प्रवृत्तिमार्गमें पुष्टि करके उसमें सन्तोष माना जाय, ऐसा करनेसे जिस लाभके वास्ते क्रिया अनुष्ठा

करते हो उस लाभसे वञ्चित रहना पड़ेगा और यथार्थ वोधिबीज (सम्यक्त्व) की प्राप्ति होना महा मुश्किल हो जायगा।

इत्यादि पूर्वाचार्यमहापुरुषोंके वचनोंको देख तथा सुनकर और वर्तमानमें प्रायः अविधि आशातना और अविनयका ही साम्राज्य देखकर तथा सद्गुरुका उपदेश श्रवण करके मेरे चित्तमें विचार हुआ कि एक ही सी पुस्तकमें दर्शन पूजा और सामायिक की विधि आत्मार्थि भव्यजीवोंके सुगमतासे समजमें आजाय, ऐसी लखी जाय तो अनेक जीवोंको लाभ पहुंचे, तो उससे किञ्चित् लाभका भागी मैं भी हूँगा, क्योंकि श्रीतपागच्छाचार्य श्रीमद् लक्ष्मीसूरिजीने "उपदेशप्रासाद" ग्रन्थमें खुलासा लिखा है कि:—

"धन्य है वह पुरुष जो विधियुक्त क्रिया अनुष्ठान करता है तथा धन्य हैं जो विधिका उपदेश देकर प्रवृत्ति कराते हैं और धन्य हैं उसको जो विधिसे धर्मकृत्य करनेवालोंकी अनुमोदना करता है।"

और ऐसा ही पूज्यपाद उपाध्यायजी श्रीमद्देवचन्द्रजी महाराज अपनी रची हुई चौवीसीमें चौथे श्रीसभवनाथभगवान् के स्तवनकी पांचमी गाथा में फरमाते हैं:—

॥ एक वार प्रभुवन्दनारे, आगमरीते थाय ॥
॥ कारणसत्ये कार्यनोरे, सिद्धि प्रतीत कराय ॥ ५ ॥

ऐसे २ सत्पुरुषोंके वचनोंसे प्रतीत होता है कि श्रीवीतराग की आज्ञा मुजब विधिसे क्रिया करनेसे ही यथार्थ फल प्राप्त हो कर सम्यक्त्व निर्मल होता है और कर्मोंकी निर्जरा होकर आत्मा शीघ्र मोक्ष प्राप्त करता है।

इस अभिप्रायसे इस पुस्तकमें संक्षेपसे नित्य मन्दिरजीमें प्रभुके दर्शन तथा पूजन किस प्रकार विधियुक्त करना और सामायिक किस विधिसे करना, इन विषयोंका खुलासा संक्षेपसे भावार्थसहित लिखा है सो पुस्तक पढनेसे दृष्टिगोचर होगा तथा आत्मार्थि जीव इस छोटी सी पुस्तक को मनन कर कण्ठस्थ करनेका परिश्रम करेंगे तो नित्यकृत्य यथार्थविधि से करनेमें सुगमता होगी।

और दूसरी बात यह है कि चैत्यवन्दन सामायिक आदिके पाठ तोतेकी तरह कह कर कृतार्थ हुए ऐसा अपने मनमें समझते हैं ऐसी प्रवृत्ति वर्तमानकालमें प्रायः देखनेमें आती है, परन्तु जब तक हरेक पाठका भावार्थ समझमें नही आता है तब तक उसका पूरा लाभ प्राप्त नहीं होता इसलिये इस पुस्तकमें सर्व पाठोंका अन्वयार्थ तथा भावार्थ लिखदिया हैं सो पाठकोंको इसके ऊपर अवश्य लक्ष रखनेकी प्रार्थना हैं, कि जिससे यथार्थ फलकी प्राप्ति हो।

सामायिक करते समय पुरुषों को आभूषण (गहने आदि) बिलकुल शरीर पर नहीं रखने चाहिये क्योंकि यह भी दो घड़ीका चरित्र हैं इसलिये द्रव्यपरिग्रह तथा भावपरिग्रहसे रहित होकर सामायिक करना योग्य है।

और पूजाके समय लोहेकी वस्तु पासमें नहीं रखना चाहिये, विशेषकर प्रभुके शरीरसे तो लोहे का स्पर्श सर्वथा निषिद्ध है।

इस ग्रन्थके लिखने की प्रेरणा श्रीमद् जैनाचार्य श्री १००८ श्री

जिनचारित्रसूरिजी महाराजके उपदेशसे हुई और मेरी अल्पबुद्धि मुजब यह ग्रन्थ लिखकर अर्पण किया तब श्रीआचार्यमहराजने अनुग्रह करके श्रीमद्‌अभयदेवसूरिग्रन्थमाला में छपवाकर प्रकाश करनेकी आज्ञा प्रदान की, जिसके वास्ते श्रीमद्‌आचार्य-महाराज अनेकानेक धन्यवादके पात्र हैं।

इस पुस्तकमें विशेष सहायता परमयोगीश्वर श्रीमद्‌चिदानन्दजीमहाराजरचित ग्रन्थ "स्याद्वादानुभवरत्नाकर" और जिनाज्ञाविधिप्रकाश से ली गई है और चैत्यवन्दन सामायिक आदि पाठोंका अन्वयार्थ तथा भावार्थ "पञ्चप्रतिक्रमणसूत्र" जो श्रीआत्मानन्दजैनपुस्तक-प्रचारक-मंडल आगराकी तरफसे छपा है उससे लिखा गया हैं जिसके वास्ते उक्त मण्डलको अनेकानेक धन्यवाद देता हूं।

इस पुस्तकके छपवानेमें निम्नलिखित महानुभावोंने नीचे मुजम प्रतियां लेकर द्रव्यकी सहायता देकर ज्ञान-वृद्धिमें लाभ लिया है:—

१००१ बाबू भेरूदानजी गोलछा श्रीबीकानेर-निवासी।

५०० राय बद्रीदासजी बहादुरके सुयोग्यपुत्र बाबू रायकुमारसिंहजी राजकुमारसिंहजी श्रीकलकत्ता-निवासी।

५०० बाबू चुन्नीलालजीके सुयोग्यपुत्र अमीचंदजी छोटमलजी गोलछा श्रीबीकानेर-निवासी।

५०० बाबूभैरूदानजी हाकिमकोठारी श्रीरावतमलजीके सुयोग्यपुत्र बीकानेर-निवासी।

उपरोक्त महाशयोंको अनेकानेक धन्यवाद है कि जिन्होंने इस

ग्रन्थको ज्ञानकी प्रभावनाके वास्ते विस्तीर्ण करनेका संकल्प करके पुण्यानुबन्धिपुण्य के भागी हुए !...

पण्डितप्रवर श्रीयुत वीरभद्रजी व्यकरणतीर्थ ने कृपा करके इस ग्रन्थको शुद्ध करनेका कष्ट उठाया सो धन्यवाद के पात्र हैं।

इस ग्रन्थमें मतिदोषसे श्रीवीतरागदेवकी आज्ञाके विपरीत लिखनेमें आया होय तो छओं साक्षीसे त्रिकरण त्रियोग करके मिथ्यादुष्कृत. देता हूं और नम्रतापूर्वक चतुर्विध श्रीसंघसे क्षमा की प्रार्थना करता हूं।

लेखक—

चतुर्विधसंघका दास,

कोठारी जमनालाल,

निवासी उदयपुर हाल कलकत्ता।

विषयानुक्रमणिका ।

॥ ॐ ॥

श्रीजिन दर्शन, पूजन
और
सामायिक विधि प्रकाश ।

प्रातःकाल जब अच्छी तरह प्रकाश हो जाय, तब श्रावक शरीर शुद्ध करके स्वच्छ वस्त्र धारण करे; और दुपटे का उत्तरासन करके मन्दिरजीको जावे ; वहां मन्दिरजीकी सीढ़ियोंपर पैर धरते ही इस शब्दका उच्चारण करे—"निस्सिही" (निषेध)। इस निस्सिहीके कहनेसे संसार सम्बन्धी कर्म-बन्धनके जो कारण हैं उन सबका निषेध हो गया (अर्थात् सावद्य व्यापारका निषेध हो गया)। इसके बाद मन्दिरके भीतर प्रवेश करे, और सब मन्दिरकी देख भाल करके जो जो आशातनादि (त्रुटि-आदि) दृष्टिमें आवे, मन्दिरके सेवकों या कार्यभारीको कहकर उस आशातना (त्रुटि) मिटवावे, यह काम प्रत्येक श्रावकके करने योग्य है। इस वास्ते जो आशातना (त्रुटि) होती हो उसको अपनी शक्तिके अनुसार तन, मन, धनसे दूर करना चाहिये। क्योंकि आशातना (त्रुटि) होनेसे श्रीसंघ (साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविकाको संघ कहते है) में हानि होती है इसलिये हरएक व्यक्ति को इसका उपयोग रखना आवश्यक है।

श्री मन्दिरजीका निरीक्षण कर तीन प्रदक्षिणा दे और भगवानके सन्मुख उपस्थित होते ही दोनों हाथ जोड़ मस्तक तक ले जाकर हर्षपूर्वक "नमो जिणाणं" इस शब्दका उच्चारण करे। पुनः (निस्सिही) निषेध कहे। इस दूसरी निस्सिही (निषेध) के कहनेसे जो मन्दिरजीके सम्बन्धी आरम्भका कहना बाकी था उसका भी निषेध हो गया।

इसके पश्चात् धूप हाथमें लेकर इस मंत्रको तीन बेर पढ़कर धूपदानमें डालकर धूप करे। धूपका मन्त्रः—

"ॐ अर्हत। श्रीखंडागरुकस्तूरीद्रुमनिर्यासंभवः।
प्रीणनः सर्वदेवानां धूपोऽस्ति जिनपूजने ॥१॥

तिसके पश्चात् तीन प्रदक्षिणा देकर श्रावक हाथमें चावल लेकर यह मंत्र पढ़े,—

"ॐ अर्हतं। प्रीणनं निर्म्मलं वल्यं मांगल्यं सर्वसिद्धिदम्। जीवनं कार्य्यसंसिद्धौ भूयान्मे जिनपूजने" ॥ १ ॥

यह मन्त्र तीन बार कहकर प्रथम तीन ढिगली (ढेरी) करे और मनमें चिन्तवन करे कि मुझमें ज्ञान, दर्शन, और चारित्र, प्रगट (प्रादुर्भूत) हों। फिर साथिया (स्वस्तिक) करे और मनमें संकल्प करे कि मैं चारों गतिसे निकलूं (मुक्त होऊँ)।

तत्पश्चात् इसी प्रकार सिद्धशिला का आकार (अर्द्ध-

चन्द्राकार) बनावे और यह विचार करे कि "मुझे मोक्ष प्राप्त हो" इस प्रकार चावल चढ़ाकर फिर नैवेद्य चढ़ावे। उस समय यह मन्त्र कहे किः—

"ॐ अर्हंतं। नानारसैस्तु सम्पूर्णं नैवेद्यं सर्वमुत्तमम्। जिनाग्रे ढौकितं सर्वं सम्पदा मम जायताम्" ॥१॥

यह मंत्र तीन बेर कहकर नैवेद्य चढ़ावे। फिर उत्तम फल हाथमें लेकर यह मन्त्र तीन वार उच्चारण करे, फिर फल चढ़ावे।

"ॐ अर्हं हुं। जन्मफलं स्वर्गफलं पुण्यफलं मोक्षफलम्। दद्याज्जिनार्च्चने चैव जिनपादाग्र-संस्थितं" ॥ १ ॥

यहांतक क्रिया करके फिर तीसरी निस्सिही कहे, इस निस्सिहीके कहनेसे द्रव्य-क्रियाका भी निषेध हो गया।

भाव पूजा विधि।

चैत्यवंदन तीन प्रकारका कहा है। (१) जघन्य (२) मध्यम उत्कृष्ट (३)।

उत्कृष्ट चैत्यवन्दन।

उत्कृष्ट चैत्यवंदन करनेकी इच्छावाला प्रथम एक खमासणा (पंचांग प्रणाम) देकर खड़ा होकर "इरियावही, तस्सउत्तरी, अरिहंत चेइयाणं" आदि पाठ कहकर काउसग्ग [कायोत्सर्ग] करे, सो गुरुगमसे धारा हुआ होय तब तो इरियावहीके

१८२४१२० मिच्छामि दुष्कृत का चित्तवन करे। कदाचित् यह विधि स्मरण न हो तो एक लोगस्स अथवा चार नवकारका कायोत्सर्ग करे। फिर नमस्कारपूर्वक कायोत्सर्ग पारके प्रगट लोगस्स कहें।

जघन्य तथा मध्यम चैत्यवन्दन।

यदि जघन्य तथा मध्यम चैत्यवन्दन करना हो तो इरियावही आदि क्रियाके करनेको आवश्यकता नहीं। इसमें केवल तीन खमासण [पंचाङ्ग प्रणाम] देकर वांया गोड़ा (डाया घुटना) ऊंचा करके दोनों हाथों को कुणिओं को हृदयपर रख दसों अंगुलियोंको मिलाकर निम्नलिखित श्लोकों का विधिवत् पाठ करता हुआ चैत्यवन्दन करे सो लिखते हैं।

अथ सकलतीर्थंकर नमस्कार।

जयउ सामिय जयउ सामिय रिसह सत्तुंजि, उज्जित पहु नेमिजिण, जयउ वीर सच्चउरिमंडण ॥१॥

भरुअच्छहिं मुणिसुव्वय, मुहरिपास दुह-दुरिअ-खंडण, अवर विदेहिं तित्थयरा, चिहुं दिसिविदिसि जं केवि तीआणागयसंपइय वंदुं जिण सव्वेवि ॥२॥

कम्मभूमिहिं २ पढमसंघयणि उक्कोसय सत्तरिसयं जिणवराण विरहंत लब्भइ, नवकोडिहिं केवलीण,

कोडिसहस्स नव साहु संपय । संपइ जिणवर वीस मुणि बिहुं कोडिहिं वरनाण, समणह कोडिसहसदुअ थुणिज्जइ निच्च विहाणि ॥३॥

सत्ताणवइ सहस्सा, लक्खा छप्पन्न अट्ठ कोडीओ। चउसय छायासीया, तिअलोए चेइए वन्दे ॥४॥ वन्दे नवकोडिसयं, पणवीसं कोडि लक्ख तेवन्ना। अट्ठावीस सहस्सा, चउसय अट्ठासिया पडिमा ॥ ५ ॥

जं किंचि नाम तित्थं, सग्गे पायालि माणुसे लोए। जाइं जिणबिंबाइं ताइं सव्वाइं वंदामि ॥ १ ॥

अन्वयार्थ—'जयउ सामिय जयउ सामिय' हे स्वामिन्! आपकी जय हो, आपकी जय हो। 'सत्तुंजि' शत्रुञ्जय पर्वतपर स्थित 'रिसह' हे ऋषभदेव प्रभो! 'उज्जिंत' उज्जयन्त-गिरिनार-पर्वत पर स्थित 'पहु नेमिजिण' हे नेमिजन प्रभो! 'सच्चउरिमंडण' सत्यपुरी-साचौरके मण्डन 'वीर' हे वीर प्रभो! 'भरुअच्छहि' भृगुकच्छ-भरुचमें स्थित 'मुणिसुव्वय' हे मुनिसुव्रत प्रभो! तथा 'मुहरि' मुहरी—टीटोई—गांवमें स्थिति 'पास' हे पार्श्वनाथ प्रभो! 'जयउ' आपकी जय हो। 'विदेहिं' महाविदेह क्षेत्रमें 'दुह-दुरि-अखंडण' दुःख और पापका नाश करने वाले (तथा) 'चिहु' चार "दिसि विदिसि" दिशाओं और विदिशाओं में 'तीआणागयसंपइअ'

भूत, भावि और वर्तमान 'ज' केवि' जो कोइ 'अवर' अन्य 'तित्थयरा' तिर्थंकर हैं, 'जिण सव्वेवि' उन सब जिनेश्वरोंको 'वंदु" वन्दना करता हूं ॥ ३ ॥

'कम्मभूमिहिं कम्मभूमिहिं' सब कर्म भूमियों में (मिलकर) 'पढ़मसंघयणि' प्रथम संहनन वाले 'विहरंत' विहरमाण 'जिणवराण' जिनेश्वरोंको 'उक्कोसय' उत्कृष्ट (संख्या) 'सत्तरिसय' एक सौ सत्तरकी १७० 'लब्भई' पायी जाती है, (तथा) 'केवलीण' सामान्य केवलज्ञानियोंकी (संख्या) 'नवकोडिहिं' नव करोड़ (और) 'साहु' साधुओंको (संख्या) 'नव' नव 'कोडिसहस्स' हजार करोड 'संपय' सांप्रत कालमें पायी जाती है। 'संपइ' वर्तमान समयमें 'जिणवर' जिनेश्वर 'वीस' वीस हैं, 'वरनाण' प्रधान ज्ञान वाले केवल ज्ञानी 'मुणि' मुनि 'विहु" दो 'कोडिहिं' करोड़ हैं, (और) 'समणह 'सामान्य श्रमण मुनि 'कोडिसहसदुअ' दो हजार करोड़ हैं (उनकी) 'निच्च' सदा 'विहाण' प्रातः कालमें 'थुणिज्जइ' स्तुति की जाती है ॥ २ ॥

'तिअलोए' तीन लोकमें 'अट्ठ कोडीओ' आठ करोड़, 'छप्पन' छपन 'लक्खा' लाख 'सत्ताणवइ' सत्तानवे 'सहस्सा' हजार 'चउसय' चार सौ 'छायासीया' छयासी चैत्य—जिन-प्रासाद हैं (उनको) 'वंदे' बन्दन करता हूं। 'नवकोडिसयं पणवीसं कोडि' नव सौ पचीस करोड़ 'तेवन्ना लक्ख' तिरपन लाख 'अट्ठावीस सहस्सा' अठाइस हजार 'चउसय' चार सौ 'अट्ठासीआ' अठासी 'पडिमा' प्रतिमाओं को बन्दन करता हूं।

'सग्गे' स्वर्ग 'पायाली' पाताल (और) 'माणुसे' मनुष्य 'लोए' लोकमें 'ज' जो 'किंचि' कोई 'तित्थ' तीर्थ 'नाम' प्रसिद्ध हो तथा 'जाइ' जो 'जिणबिम्बाइ' जिन-बिम्ब हों 'ताइं' उन 'सव्वाइं' सबको 'वंदामि' वन्दन करता हूं ॥ १ ॥

भावार्थ—(कुछ खास स्थानोंमें प्रतिष्ठित तीर्थंकरोंकी महिमा और जिन-वन्दना) शत्रुंजय पर्वत पर प्रतिष्ठित हे आदिनाथ विभो ! गिरिनार पर विराजमान हे नेमिनाथ भगवन् ! सत्यपुरी की शोभा बढ़ाने वाले हे महावीर परमात्मन ! भरूचके भूषण हे मुनि सुव्रत जिनेश्वर ! और मुहरि गांवके मण्डन हे पार्श्वनाथ प्रभो आप सबकी निरन्तर जय हो। महाविदेह क्षेत्रमें विशेष क्या, चारो दिशाओं में और चारों विदिशाओं में जो जिन हो चुके हैं जो मौजुद हैं और जो होनेवाले है उन सभीको मैं वन्दन करता हूं। सभी जिन दुःख और पापका नाश करने वाले हैं ॥ ३ ॥

(तीर्थङ्कर केवली ओर साधुओंकी स्तुति] सब कर्म-भूमियोंमें—पांच भरत पांच ऐरवत और पांच महाविदेहमें—विचरते हुए तीर्थङ्कर अधिकसे अधिक १७० पाये जाते हैं। वे सब प्रथम संहननवाले ही होते हैं। सामान्य केवली उत्कृष्ट नव करोड़ और साधु उत्कृष्ट नव हजार करोड़—९० अरब पाये जाते है, परन्तु वर्तमान समयमें उन सबकी संख्या जघन्य है, इसलिये तीर्थङ्कर सिर्फ २०, केवलज्ञानी मुनि दो करोड़ और साधु दो हजार करोड़—२० अरब—हैं। इन सबको मैं हमेशा प्रातःकालमें स्तुति करता हूं ॥ २ ॥

(तीनों लोकके चैत्योंका वन्दन) स्वर्ग, मृत्यु और पाताल इन तीनों लोकके सम्पूर्ण चैत्योंकी संख्या आठ करोड छप्पन लाख सत्तानवे हजार चार सौ और छयासी (८५६९७४८६) है, उन सबको मैं वन्दन करता हूं और नव सौ पच्चीस करोड़ तिरपन लाख अठाइस हजार चार सौ अट्ठासी प्रतिमाओं को वन्दन करता हूं ॥ ३ ॥

[जिन बिम्बोंको नमस्कार]। स्वर्ग-लोक, पाताल लोक और मनुष्य लोकमें—ऊर्ध्व, अधो और मध्यम लोकमें जो तीर्थ और जिन प्रतिमाएं हैं उन सबको मैं वन्दन करता हूं ॥ १ ॥

नमुत्थुणं ।

नमुत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं, आइगराणं तित्थयराणं सयं-संबुद्धाणं, पुरिसुत्तमाणं पुरिस-सीहाणं पुरिस-वर-पुंडरीयाणं पुरिस-वर-गंधहत्थीणं, लोगुत्तमाणं लोग-ना-हाणं लोग-हियाणं लोग-पईवाणं लोग-पज्जोअ-गराणं, अभय-दयाणं चक्खु-दयाणं मग्ग-दयाणं सरण-दयाणं बोहि-दयाणं, धम्म-दयाणं धम्म-देसियाणं धम्म-नायगाणं धम्म-सारहीणं धम्म-वर-चाउरंत-चक्क-वट्टीणं, अप्पडि-हय-वर-नाण-दंसण-धराणं विअट्ट-छउमाणं, जिणाणं

जावयाणं, तिन्नाणं तारयाणं, बुद्धाणं बोहयाणं, मुत्ताणं मोअगाणं, सव्वन्नूणं सव्वदरिसीणं, सिवमयलमरुअमणंतमक्खयमव्वाबाहमपुणरावित्ति सिद्धिगइ-नामधेयं ठाणं संपत्ताणं। नमो जिणाणं जिअभयाणं। जे अ अईआ सिद्धा, जे अ भविस्संति णागए काले। संपइ अ वट्टमाणा, सव्वे तिविहेण वंदामि ॥१॥

अन्वयार्थ—'नमुत्थु णं' नमस्कार हो 'अरिहंताणं भगवन्ताणं अरिहन्त भगवान् को [कैसे हैं वे भगवान सो कहते हैं–) 'आइगराणं' धर्मकी शुरूआत करने वाले, 'तित्थयराणं' धर्मतीर्थकी स्थापना करने वाले 'सयंसंबुद्धाणं' अपने आपही बोध को पाये हुए, 'पुरिसुत्तमाणं पुरुषोंमें श्रेष्ठ 'पुरिस—सीहाणं' पुरुषोंमें सिंहके समान 'पुरिसवर-पुंडरीआणं' पुरुषोंमें श्रेष्ठ कमलके समान, 'पुरिसवर-गंधहत्थीणं' पुरुषोंमें प्रधान गन्धहस्तिके समान 'लोगुत्तमाणं' लोगोंमें उत्तम 'लोग-नाहाणं" लोगोंके नाथ, 'लोग-हिआणं' लोगोंका हित करनेवाले, 'लोग-पईवाणं' लोगोंके लिये दीपकके समान, 'लोग-पज्जोअ-गराणं' लोगोंमें उद्द्योत करनेवाले, 'अभय-दयाणं' अभय देने वाले, 'चक्खुदयाणं' नेत्र देने वाले 'मग्ग-दयाणं' धर्ममार्गके दाता 'सरणदयाणं' शरण देनेवाले 'बोहिदयाणं' बोधि अर्थात् सम्यक्त्व

देने वाले 'धम्म-दयाणं' धर्मके दाता 'धम्म-देसिआणं' धर्मका उपदेश देने वाले 'धम्म-नायगाणं' धर्मके नायक 'धम्म-सारहीणं' धर्मके सारथी 'धम्म-वर-चाउरन्त-चक्कवट्टीणं' धर्ममें प्रधान तथा चार गतिका अन्त करने वाले, अतएव चक्रवर्तीके समान, 'अप्पडिहय-वरनाणदंसण-धराणं' अप्रतिहत तथा श्रेष्ठ ऐसे ज्ञान दर्शनको धारण करने वाले 'विअट्ट-छउमाणं' अर्थात् घाति कर्म रहित, जिणाणं (राग द्वेषको) स्वयं जीतने वाले 'ज़ावआणं' औरोंको जिताने वाले 'तिन्नाण' तारयाणं' (संसारसे) स्वयं तरे हुए और दूसरोंको तारनेवाले 'बुद्धाणं वोहयाणं' स्वयं वोधको पाये हुए और दूसरों को बोध प्राप्त करानेवाले, 'मुत्ताणं मोअगाणं' [वन्धनसे] स्वयं छुटे हुए और दूसरों को छुड़ानेवाले 'सव्वन्नूणं' सर्वज्ञ, 'सव्वदरिसीणं' सर्वदर्शी 'सिवं' निरुपद्रव, 'अयलं' स्थिर, 'अरुअं' रोग-रहित, 'अणंतं' अनन्त अर्थात् अन्तरहित, 'अक्खयं' अर्थात् क्षयरहित, 'अव्वावाह' अव्या-बाध अर्थात् व्यावाधा-पीडारहित, 'अपुणराविन्ति' पुनरागमन रहित [ऐसे] 'सिद्धि-गइ-नामधेयं ठाणं' सिद्धिगति नामक स्थानको अर्थात् मोक्षको 'संपत्ताणं' प्राप्त करने वाले।

'नमो' नमस्कार हो 'जिअभयाणं' भयको जीतनेवाले 'जिणाणं' जिन भगवानको।

'जे' जो 'सिद्धा' सिद्ध 'अईआ' भूतकालमें हो चुके हैं, 'जे' जो 'अणागए' भविष्यत् 'काले' कालमें 'भविस्संति' होंगे 'अ' और [जो] 'संपइ' वर्तमान कालमें 'वट्टमाणा'

विद्यमान हैं 'सव्वे' उन सबको 'तिविहेण' तीन प्रकारसे अर्थात् मन, वचन, कायासे 'वंदामि' वन्दन करता हूं ॥

भावार्थ—अरिहंतोंको मेरा नमस्कार हो; जो अरिहंत, भगवान् अर्थात् ज्ञानवान् हैं, धर्मकी आदि करनेवाले हैं, साधु साध्वी-श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध तीर्थकी स्थापना करने वाले हैं, दूसरेके उपदेशके सिवाय ही बोधको प्राप्त हुए हैं, सब पुरुषों में सिंहके समान निडर हैं, पुरुषोंमें कमलके समान अलिप्त हैं, पुरुषोंमें प्रधान गन्धहस्तिके समान सहनशील हैं, लोगोंमें उत्तम हैं, लोगोंके नाथ हैं, लोगोंके हितकारक हैं, लोकमें प्रदीपके समान प्रकाश करनेवाले है, लोकमें अज्ञान अन्धकारका नाश करने वाले हैं, दुखियोंको अभयदान देनेवाले हैं, अज्ञानसे अन्ध ऐसे लोगोंको ज्ञानरूप नेत्र देने वाले हैं, मार्गभ्रष्टको अर्थात् गुमराह को मार्ग दिखानेवाले हैं, शरणागतको शरण देने वाले हैं, सम्यक्त्व प्रदान करनेवाले हैं, धर्महीनको धर्म-दान करनेवाले हैं, जिज्ञासुओंको धर्मका उपदेश करनेवाले हैं, धर्मके नायक-अगुए हैं, धर्मके सारथी-संचालक हैं, धर्ममें श्रेष्ठ हैं तथा चक्रवर्तीके समान चतुरन्त हैं अर्थात् जैसे चार दिशाओंकी विजय करनेके कारण चक्रवर्ती चतुरन्त कहलाता है वैसे अरिहंत भी चार गतियोंका अन्त करनेके कारण चतुरन्त कहलाते हैं, सर्वपदार्थोंके स्वरूप को प्रकाशित करने वाले ऐसे श्रेष्ठ ज्ञान-दर्शनको अर्थात् केवल-ज्ञान–केवलदर्शनको धारण करने वाले हैं, चार घाति-कर्मरूप आवरणसे मुक्त हैं, स्वयं राग द्वेषको जीतने वाले और दूसरोंको

भी जितानेवाले हैं, स्वयं संसारके पार पहुंच चुके हैं, और दूसरों को भी उसके पार पहुँचाने वाले हैं, स्वयं ज्ञानको पाये हुए हैं, और दूसरोंको भी ज्ञानप्राप्त कराने वाले हैं, स्वयं मुक्त हैं ओर दूसरोंको भी मुक्तिप्राप्त कराने वाले हैं, सर्वज्ञ हैं, सर्वदर्शी हैं तथा उपद्रव-रहित, अचल, रोगरहित, अनन्त, अक्षय, व्याकुलता-रहित और पुनरागमन-रहित ऐसे मोक्ष स्थानको प्राप्त हैं।

सब प्रकारके भयोंको जीते हुए जिनेश्वरोंको नमस्कार हो।

जो सिद्ध अर्थात् मुक्त हो चुके हैं, जो भविष्यमें मुक्त होने वाले हैं तथा वर्तमानमें मुक्त हो रहे हैं उन सब-त्रैकालिक सिद्धोंको मैं मन, वचन और शरीरसे वंदन करता हूं।

जावंति चेइआइं।

जावंति चेइआइं, उड्ढे अ अहे अ तिरिअलोए अ।
सव्वाइं ताइं वंदे, इह संतो तत्थ संताइं ॥१॥

शब्दार्थ—'जावंति' जितने 'चेइआइं' चैत्य—जिन प्रतिमाएं 'उड्ढे अ' ऊर्ध्व लोकमें, 'अहे अ' अधोलोकमें और 'तिरिअलोए अ' तिर्यक् लोकमें—मर्त्यलोकमें हैं, 'सव्वाइं ताइं' उन सबको 'वंदे' मैं वंदना करता हूं 'इह संतो' इहां ही रहा हुआ 'तत्थ संताइं' वहां रहे हुए (जिन-चैत्यों को)।

भावार्थ—देवलोक, पाताल और मनुष्य लोकमें विद्यमान जितनीं जिन प्रतिमाएं हैं उन सबको मैं यहां रहा हुआ वंदन करता हूं।

इसके वाद 'खमासमण' देकर 'जावंत केवि साहू' का पाठ कहना चाहिए।

जावंत केवि साहू ।

जावंत केवि साहू, भरहेरवय महाविदेहे अ ।
सव्वेसि तेसि पणाओ, तिविहेण तिदंड-विरयाणं ॥

शब्दार्थ–'जावंत' जो 'केवि' कोई 'साहू' साधु मुनिराज 'भरहे' भरत-क्षेत्रमें 'एरवय' ऐरवत क्षेत्रमें 'महाविदेहे अ'-और महाविदेह क्षेत्रमें हैं, 'सव्वेसिं तेसिं' उन सवको 'पणओ' मैं नमस्कार करता हूं 'तिविहेण' तीनो प्रकारसे 'तिदंडविरयाणं' तीनों दंडोंसे विरत (साधुमुनिराजों को)।

भावार्थ—भरत, ऐरवत और महाविदेह क्षेत्रमें जो कोई तीनों दंडोंसे (मन, वचन और कायासे या करना, कराना और अनुमोदनसे) किये जाने वाले सावद्य कर्मोंसे विरत-रहित साधु मुनिराज हैं उन सवोंको मैं मन, वचन और कायासे नमस्कार करता हूं।

नमोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः ॥

श्रीअरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सव साधुओंको नमस्कार हो ॥

उवसग्गहरं ।

उवसग्गहरं-पासं, पासं वंदामि कम्म-घण-मुक्कं ।

विसहर-विस-निन्नासं, मंगल-कल्लाण-आवासं॥१॥

विसहर-फुलिंग-मंतं, कंठे धारेइ जो सया मणुओ।
तस्स गह-रोग-मारी, दुट्ठजरा जंति उवसामं ॥२॥

चिट्ठउ दूरे मंतो, तुज्झ पणामोवि बहुफलो होई।
नर-तिरिएसु वि जीवा, पावंति न दुक्खदोगच्चं॥३॥

तुह सम्मत्ते लद्धे, चिंतामणिकप्पपायवब्भहिए।
पावंति अविग्घेणं, जीवा अयरामरं ठाणं ॥४॥

इअ संथुओ महायस! भत्तिब्भर-निब्भरेण हिअएण
ता देव! दिज्ज बोहिं, भवे भवे पास-जिणचंद ॥५॥

अन्वयार्थ—'कम्म-घण-मुक्क' कर्मोंके समूहसे छूटे हुए, 'विसहर-विस-निन्नासं' साँपके जहरका नाश करने वाले, 'मंगल-कल्लाण-आवासं' मंगल तथा आरोग्यके स्थान भूत [और] 'उवसग्गहरंपासं' उपसर्गोंको हरण करनेवाले पार्श्वनामक यक्षके स्वामि (ऐसे) 'पास' श्री पार्श्वनाथ भगवानको 'वन्दामि' वन्दन करता हूं ॥ १ ॥

'जो' जो 'मणुओ' मनुष्य 'विसहर-फुलिंगमंतं' विषधर स्फुलिङ्ग नामक मन्त्रको 'कंठे' कण्ठमें 'सया' सदा 'धारेइ' धारण करता है 'तस्स' उसके 'गह' ग्रह, 'रोग' रोग 'मारी' हैजा

और 'दुट्ठजरा' दुष्ट—कुपित—ज्वर (आदि] 'उवसामं' उपशान्तिको 'जन्ति' पाते हैं ॥ २ ॥

'मंतो' मन्त्र 'दूरे' दूर 'चिट्ठउ' रहो 'तुज्झ' तुझको किया हुआ 'पणामोवि' प्रणाम भी 'बहुफलो' बहुत फलदायक 'होइ' होता है [क्योंकि उससे] 'जीवा' जीव 'नरतिरिएसुवि' मनुष्य, और तिर्यंच गतिमें भी 'दुक्खदोगच्चं' दुःख–दरिद्रता 'न पावन्ति' नही पाते हैं ॥ ३ ॥

'चिंतामणिकप्पपायवब्भहिए' चिन्तामणि और कल्पवृक्षसे भी अधिक (ऐसे) 'सम्मत्ते' सम्यक्त्वको 'तुह' तुझसे 'लद्धे' प्राप्त करलेने पर 'जीवा' जीव 'अविग्घेणं' विघ्नके सिवाय 'अयरामर' जरा-मरण रहित 'ठाणं' स्थानको 'पावन्ति' पाते हैं।

'महायस !' हे महायशस्विन् ! (मैंने) 'इअ' इस प्रकार 'भत्ति-ब्भर-निब्भरेण' भक्तिके आवेगसे परिपूर्ण 'हिअएण' हृदयसे 'संथुओ' [तेरी] स्तुति की, 'ता' इसलिये 'पास-जिनचंद' हे पार्श्व-जिन चन्द्र 'देव' देव ! 'भवे भवे' हरएक भवमें (मुझको)'बोहि' सम्यक्त्व 'दिज्ज' दीजिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—उपसर्गोंको दूर करनेवाला पार्श्वनामक यक्ष जिनका सेवक है, जो कर्मोंकी राशिसे मुक्त हैं, जिनके स्मरणमात्रसे विषैले साँपका जहर नष्ट हो जाता है और जो मंगल तथा कल्याणके आधार हैं ऐसे भगवान् श्री पार्श्वनाथको मैं वन्दन करता हूं ॥१॥

जो मनुष्य भगवान्‌के नाम-गर्भित 'विषधरस्फुलिङ्ग' मन्त्रको हमेशां कण्ठमें धारण करता है अर्थात् पढ़ता है उसके प्रतिकूल

ग्रह, कष्ट-साध्य रोग, भयंकर मारी और दुष्ट ज्वर ये सभी उपद्रव शान्त हो जाते हैं ॥२॥

हे भगवान्! 'विषधरस्फुलिङ्ग' मन्त्रकी बात तो दूर रही, शिर्फ तुझको किया हुआ प्रणाम भी अनेक फलोंको देता है क्योंकि उससे मनुष्य तो क्या तिर्यञ्च भी दुःख या दरिद्रता कुछ भी नहीं पाते ॥ ३ ॥

सम्यक्त्व गुण, चिन्तामणि-रत्न और कल्पवृक्षसे भी उत्तम है। हे भगवान्! उस गुणको तेरे आलम्बनसे प्राप्त कर लेनेपर जीव निर्विघ्नतासे अजरामर पदको पाते हैं ॥४॥

हे महायशस्विन् पार्श्वनाथ प्रभो! इस प्रकार भक्तिपूर्ण हृदयसे तेरी स्तुति करके मैं चाहता हूं कि जन्म-जन्ममें मुझको तेरी कृपासे सम्यक्त्वकी प्राप्ति हो ॥५॥

जय वीयराय।

जय वीयराय! जगगुरु! होउ ममं तुह पभावओ भयवं!
भव-निव्वेओ मग्गा-णुसारिआ इट्ठफल-सिद्धी ॥ १ ॥
लोग-विरुद्ध-च्चाओ गुरु-जण-पूआ परत्थ-करणं च।
सुह-गुरु-जोगो तव्वयण-सेवणा आभवमखण्डा ॥२॥

अन्वयार्थ—'वीयराय' हे वीतराग! 'जगगुरु' हे जगद्गुरो! 'जय' (तेरी) जय हो। 'भयवं' हे भगवान्! 'तुह' तेरे 'पभावओ' प्रभावसे 'ममं' मुझको 'भवनिव्वेओ' संसारसे वैराग, 'मग्गाणुसा-

रिआ' मार्गानुसारिपन, 'इट्ठफलसिद्धी' इष्ट फलकी सिद्धि, 'लोग-विरुद्धच्चाओ' लोक विरुद्ध कृत्यका त्याग 'गुरुजणपूआ' पूजनीय जनोकी पूजा 'परत्थकरणं' परोपकारका करना, 'सुहगुरुजोगो' पवित्र गुरुका सङ्ग 'च' और 'तव्वयण-सेवणा' उनके वचनका पालन 'आभवं' जीवन पर्यन्त 'अखंडा' अखण्डित रूपसे 'होउ' हो।

भावार्थ—हे वीतराग! हे जगद्गुरो! तेरी जय हो। संसारसे वैराग्य, धर्म-मार्गका अनुसरण, इष्ट फलकी सिद्धि, लोकविरुद्ध व्यवहारका त्याग, बड़ोंके प्रति बहुमान, परोपकारमें प्रवृत्ति, श्रेष्ट गुरुका समागम और उनके वचनका अखण्डित आदर—ये सब बातें हे भगवन्! तेरे प्रभावसे मुझे जन्म जन्ममें मिले ॥ १—२ ॥

अरिहंत चेइयाणं।

अरिहंतचेइयाणं करेमि काउस्सग्गं वंदण-वत्तियाए, पूअणवत्तियाए, सक्कारवत्तियाए, सम्माण-वत्तियाए, बोहिलाभवत्तियाए, निरुव-सग्गवत्तियाए॥ सद्धाए, मेहाए, धिईए, धारणाए, अणुप्पेहाए, वड्ढमाणीए, ठामि काउस्सग्गं ॥

अन्वयार्थ—'अरिहंतचेइयाणं' श्रीअरिहंतके चैत्योंके अर्थात् बिम्बोंके 'वंदणवत्तियाए' वन्दनके निमित्त 'पूअणवत्ति-याए' पूजनके निमित्त 'सक्कारवत्तियाए' सत्कारके निमित्त (और) 'सम्माणवत्तियाए' सम्मानके निमित्त (तथा) 'बोहि-

लाभवत्तियाए' सम्यक्त्वकी प्राप्तिके निमित्त 'निरुवसग्गवत्तियाए' मोक्षके निमित्त 'काउस्सग्गं' कायोत्सर्ग 'करेमि' करता हूं॥

'वड्ढमाणीए' चढ़ती हुई 'सद्धाए' श्रद्धासे 'मेहाए' बुद्धिसे 'धिईए' धृतिसे अर्थात् विशेष प्रीतिसे 'धारणाए' धारणासे अर्थात् स्मृतिसे 'अणुप्पेहाए' अनुप्रेक्षासे अर्थात् तत्त्वचिन्तनसे 'काउस्सग्ग' कायोत्सर्ग 'ठामि' करता हूं॥

भावार्थ—अरिहन्त भगवानकी प्रतिमाओंके वन्दन, पूजन, सत्कार, और सम्मान करनेका अवसर मिले तथा वन्दन आदि द्वारा सम्यक्त्व और मोक्ष प्राप्त हो इस उद्देश्यसे मैं कायोत्सर्ग करता हूं॥ चढ़ती हुई श्रद्धा, बुद्धि, धृति, धारणा और अनुप्रेक्षा पूर्वक कायोत्सर्ग करता हूं॥

अब खड़ा होकर 'अरिहंतचेइयाणं करेमि काउसग्गं' कहकर 'वंदणवत्तियाए' आदि पाठ यावत् 'अप्पाणं वोसिरामि' पर्यन्त (यह पाठ सामायिककी विधिके पृष्ठ में देखो) कहकर एक नवकारका काउसग्ग (कायोत्सर्ग) करे। और नमस्कारपूर्वक काउसग्ग पारके एक स्तुति करता हुआ; प्रभुके सम्मुख चमर डुलावे और एकाग्रचित्त होकर प्रभुके गुणोंका चिन्तवन करे; और अपनी आत्माके स्वरूपका ध्यान करता हुआ प्रभुके अन्तरंग गुणोंसे अपने निज गुणोंकी तुलना करे और दर्शनके समय एकाग्रदृष्टि प्रभुके सम्मुख रखनी चाहिये। और अन्तमें अपनी योग्यता और सामर्थ्यके अनुसार तीन वेर आवस्सहि कहे। इति दर्शनविधि॥

श्री जिनराजके पूजनकी विधि ।



प्रथम कही हुइ रीतिसे मन्दिरका सर्व काम देखकर निर्जीव भूमिपर परिमित जलसे पूर्वकी और मुख करके स्नान करे। दन्तधावन पश्चिमकी ओर मुख करके करना चाहिये। उत्तर दिशाकी तरफ मुख करके वस्त्र पहिने। एक पटके वस्त्रका उत्तरासन करे तथा उसी उत्तरासनके आठ तह करके नासिकाकी डंड़ी ढ़ककर मुखको बांधे। जिससे प्रभुके शरीरपर नाकका श्वास न पड़ने पावे। और स्नान करनेमें गरम पानीके साथ ठंडा पानी न मिलावे। स्नान करके शुद्ध गमछेसे शरीर पोंछकर कंथली पहने, स्नान करने पर पहनी हुई धोतीका छींटा न पड़ने पावे इसका ध्यान रखे। और तब सूखी हुई धोती को पहने। पूजाके वस्त्र शुद्ध तथा संसारी काममें न लगाये जांय। इसमें कटे, फटे, सिले हुए नहीं लेना। और श्वेतके सिवाय किसी रंगकी किनारी भी न हो। ऐसे वस्त्र धारणकर धोतीको जीवणी (दाहिनी) तरफकी लांग खुली रखे। पूजाके वस्त्र नित्य धोके तब दूसरे दिन पहिनने चाहिये और किसी संसारी काममें नही लगाने चाहिये। इतना ध्यान रखना कि पूजाके बाद कंघी, ब्रुश, बाल सुधारने में लगाना, पहले कदापि नहीं।

पूजा करनेवाला सात प्रकारकी शुद्धि करे।

घर अथवा दुकानादि व्यापार अथवा धन, स्त्री, पुत्र आदि का चिन्तवन न करना यह प्रथम मनःशुद्धि है।

दूसरी वचनशुद्धि, सत्य वचन बोलना है।

तीसरी कायशुद्धि, शरीरसे सावद्य (पाप) व्यापार न करना है। हाथ और दृष्टिसे भी सावद्य कार्यका इसारा न करना।

चौथी वस्त्रशुद्धि—कटा हुआ, मलमूत्रादि जिस वस्त्रको धारणकर किया होय, खण्डित, फटा हुआ, सिला हुआ, छिद्र-वाला, किसी भी रंगका, वस्त्र न पहने।

पांचवीं भूमिशुद्धि, भूमि को श्लेष्मादि अशुचि पुद्गल रहित-शुद्ध करना है।

छठी शुद्धि पूजाके पात्र स्वच्छ और घरके काममें न लाये हुए होने चाहिये।

सातवीं शुद्धि अस्थि (हड्डी) आदि उस जगह नही रहनी चाहिये।

इस प्रकार सभी शुद्धि करके शिखा बांधकर केसर चन्दन मिश्रित तिलक करे। तिलक मस्तक, ललाट, कण्ठ, हृदय, और नाभिमें लगाना चाहिये। तिलकके लिये मन्दिरजीके द्रव्यकी केसर अपने काममें नहीं लानी चाहिये। तिलक करनेके वक्त एक हाथमें चन्दन दूसरे हाथमें फुल लेकर इस मन्त्रको तीन वार पढ़े।

ओं त्रसरूपोऽहं संसारी जीवः सुवसनः सुमेध एकचित्तो निरवद्यार्हदर्च्चने निर्व्यथो भूयासं, निरुपद्रवो

भूयासं, मत्संश्रिता अन्येऽपि संसारिजीवा निरवद्यार्ह-
दर्च्चने निर्व्यथा भूयासुः, निष्पापा भूयासुः, निरुपद्रवा
भूयासुः ॥१॥

इस मन्त्रको तीन वेर पढ़कर पुष्पको अपने मस्तक ऊपर डाल कर तिलक करे।

उपरोक्त कार्य करके फिर श्री जिनराजके पूजनकी सामग्री-को पहले शुद्ध करना। उसकी विधि कहते हैं। प्रथम जल, फल, फुल, आदि अष्ट द्रव्योंको निष्पाप करे।

प्रथम जलका मन्त्र (प्रत्येक मन्त्र तीनवार पढ़ने चाहिये)

ओम् आपो अप्काया एकेन्द्रिया जीवा निरवद्या-
र्हतः पूजायां निर्व्यथाः सन्तु, निष्पापाः सन्तु, सद्गतयः
सन्तु, न मेऽस्तु संघट्टनहिंसापापमर्हदर्च्चने ॥

इस मन्त्रसे वासक्षेप, (केसर, कस्तूरी, अतर इत्यादि सुगन्धि द्रव्यमिश्रित चूर्ण) करके जलको निष्पाप करना चाहिये।

अथ फल, पुष्प, पत्र मन्त्रः—

ओं वनस्पतयो वनस्पतिकाया एकेन्द्रिया जीवा
निरवद्याऽर्हतः पूजायां निर्व्यथाः सन्तु, निष्पापाः सन्तु,
सद्गतयः सन्तु, न मेऽस्तु संघट्टनहिंसापापमर्हदर्च्चने।

इस मन्त्रसे पुष्प-फलादि को निष्पाप करना। अथ धूप, चन्दन, अग्नि मन्त्रः—

ओं अग्नयो अग्निकाया एकेन्द्रिया जीवा निरवद्या-र्हतः पूजायां निर्व्यथाः सन्तु, निष्पापाः सन्तु, सद्ग-तयः सन्तु, न मेऽस्तु संघट्टनहिंसापापमर्हदर्च्चने ॥

इस मन्त्रसे अग्नि, चन्दन को निष्पाप करना।

यहां पुष्पोंके वास्ते कुछ खुलासा कहते हैं कि पुष्प गुलाब, मोगरा, चमेली, चम्पा, जुई, आदि गन्धवाले ताजे पेड़ या वेलसे तोड़े हुए लेने चाहिये। सड़े हुए, जानवरके काटे हुए, कीड़े लगे हुए, इत्यादि नहीं लेने चाहिये। किसीके सूंघे हुए न होने चाहिये। कच्ची कली न हो, जमीनपर गिरा हुआ न हो। ऐसे फूल लेकर शुद्ध जलसे धोकर रकावीमें रख लें। सूई या कैंचीसे फूलोंको किलामना (कष्ट) नहीं पहुंचाना। ऐसे शुद्ध फ़ूल प्रभुको चढ़ाना चाहिये। माला गजरे चढाना हो तो डोरेसे वांधकर चढाना, क्योंकि जैन धर्ममें यतना (उपयोग) की मुख्यता है। जो क्रिया यतनासे होती है वही लाभकी कारण है।

फिर केसर आदि अष्ट द्रव्य एक थालीमें रखके प्रभुके मूल-गभारे (निज मन्दिर) में प्रवेश करना। इस वक्त दूसरी निस्सिही कहना। इस निस्सिही के कहनेसे प्रभुके पूजन करनेके सिवाय सर्व कामका निषेध हो जायगा। फिर सर्व सामग्रीको धूप खेकर

(देकर] सुगन्धित करना, फिर हाथ धोयकर वस्त्रसे पोंछकर प्रभूको धूप खेना [देना)।

फिर प्रभुके शरीर परसे निर्माल्य (वासी) पुष्पादि उतारकर मोरपिच्छ (मोरछल) से मार्जन करे, फिर प्रथम (पञ्चामृत) दुध-दधि-केशर-मिश्री-घृत से प्रक्षालन (स्नान करावे) फिर गायके दूधसे प्रक्षालन करावे। फिर जलसे प्रक्षालन करके खस कूंचीसे शनैः शनैः केशरादि अवशिष्ट द्रव्यको उतारे। फिर जलसे स्नान करानेके समय जलका कळसा हाथमें लेकर यह श्लोक कहे—

विमलकेवलभासनभास्करं, जगति जन्तुमहोदयकारणम्। जिनवरं बहुमानजलौघतः, शुचिमनाः स्नपयामि विशुद्धये ॥१॥

ओं ह्रीं परमपरमात्मने अनन्तानन्तज्ञानशक्तये जन्मजरामृत्युनिवारणाय श्रीमते जिनेन्द्राय जलं यजामहे स्वाहा।

यह श्लोक कहकर प्रभुको स्नान कराना ओर मनमें ऐसा चिन्तवन करना—हे प्रभु आपको स्नान करानेसे मेरा कर्मरूपी मल दूर हो।

तब तीन अंगलुहनसे प्रभुका देह पोंछे। इतना उपयोग (ध्यान) रखना कि प्रभुके किसी अवयवमें जलका अंश न रहने पावे।

अंगलूणा करके फिर केशर, बरास, कस्तुरी मिश्रित चन्दनकी कटोरी हाथमें लेकर यह मन्त्र पढे।

ओं अर्हं लं। इदं गन्धं महामोहबृंहणं प्रीणनं सदा। जिनार्चने हि सत्कर्म—संसिद्ध्यै जायतां मम ॥ २ ॥

सकलमोहतमिस्रविनाशनं, परमशीतलभावयुतं जिनम्। विनयकुंकुमदर्शनचन्दनैः, सहजतत्त्व-विकाशकृतेऽर्चये ॥३॥

मन्त्रः—ओं ह्रीं परमपरमात्मने अनन्तानन्त-ज्ञानशक्तये जन्मजरामृत्युनिवारणाय श्रीमते जिनेन्द्राय चन्दनं यजामहे स्वाहा ॥

यह कहकर प्रभुके नव अङ्गो पर केशरके तिलक करे और मनमें यह विचारे—हे प्रभु आपकी चन्दन पूजा करने से जैसा चन्दन शीतल हैं ऐसे ही मेरा चित्त काम क्रोधादि तापसे शीतल हो ॥ २ ॥

इस मन्त्रको कहकर प्रभुके नवों अंगोंकी पूजा करे, जिनका क्रम निम्न लिखित हैं।

१ पदके अङ्गुष्ठ, २ गोड़े (घुटना), ३ हाथ, ४ स्कन्ध (कन्धा), ५ मस्तक, ६ ललाट, ७ कण्ठ, ८ हृदय, ९ उदर। इस अनुक्रमसे नवों अङ्गोंकी पूजा करे। यह दूसरी चन्दन पूजा हुई।

पुष्पका चंगेर (खाली) हाथमें लेकर यह श्लोक कहना—

विकचनिर्मलशुद्धमनोरमै, विशदचेतनभाव-समुद्भवैः। सुपरिणामप्रसूनगणैर्नवैः, परमतत्त्वमयं हि यजाम्यहम् ॥३॥

ॐ ह्रीं परमपरमात्मने० पुष्पं यजामहे स्वाहा।

यह श्लोक कहकर प्रभु पर पुष्प चढाना। उस समय मनमें विचारना—हे प्रभु आपकी पुष्प पूजा करने से मुझको पञ्चाचार की प्राप्ति हो।

पञ्चाचारके नाम ये हैं—ज्ञानाचार १ दर्शनाचार २ चारित्राचार ३ तपाचार ४ वीर्याचार। यह तीसरी पुष्प पूजा हुई।

फिर धूपदानमें धूप रखके यह श्लोक कहना—

सकलकर्ममहेन्धनदाहिनं, विमलसंवरभावसुधूपनम्। अशुभपुद्गलसंगविवर्जनं, जिनपतेः पुरतोऽस्तु सुहर्षतः ॥४॥

ओं ह्रीं परमात्मने० धूपं यजामहे स्वाहा।

यह कहकर धूप करना उस समय मनमें चिन्तवन करना—हे प्रभु जैसे आपके समीप धूप करने से अशुभ पुद्गल दूर होता है इस भावसे मेरे भी अशुभ पुद्गल दूर हो। इति चोथी धूप पूजा।

फिर दीपक प्रज्वलित करके यह श्लोक कहना—

ओम् अर्हं र। पञ्चज्ञानमहाज्योतिर्म्मयाय ध्वान्तघातिने। द्योतनाय प्रदीप्ताय, दीपो भूयात् सदार्हते ॥ ५ ॥

भविकनिर्मलबोधविकाशकं, जिनगृहे शुभदीपकदीपनम्। सुगुणरागविशुद्धिसमन्वितं, दधतु भावविकाशकृते जनाः ॥५॥

ॐ ह्रीं परमपरमात्मने० दीपं यजामहे स्वाहा ॥

यह कहकर प्रभुके दाहिने बाजू दीपक रखके मनमें ऐसी भावना करना—हे प्रभु आपकी दीपकपूजा करनेसे मेरा ज्ञान रूपी दीपक प्रकाशित हो।

मन्त्र कहकर प्रभुके जोवणा (दाहिने) हाथकी तरफ दीपकको रखे। इति पांचवी दीपक पूजा ॥

फिर अक्षत हाथमें लेकर यह मन्त्र कहें।

ॐ अर्हन्तं। प्रीणनं निर्म्मलं वल्यं, माङ्गल्यं सर्वसिद्धिम्। जीवनं कार्यसंसिद्धौ, भूयान्मे जिन-पूजने ॥ ६ ॥

सकलमङ्गलकेलिनिकेतनं, परममङ्गलभावमयं जिनम्। श्रयत भव्यजना इति दर्शयद्, दधतु नाथ-पुरोऽक्षतस्वस्तिकम् ॥६॥

ओं ह्रीं परमपरमात्मने० अक्षतान् यजामहे स्वाहा ॥

यह कहकर प्रभुके आगे पाटके ऊपर अक्षत चढ़ावे। और मनमें ऐसा चिन्तवन करे—हे प्रभु आपकी अक्षत पूजा करनेसे मेरेको शुक्लध्यानकी प्राप्ति हो। इति छठी अक्षत पूजा।

फिर नैवेद्य थालमें रखकर यह मन्त्र कहकर नैवेद्य चढ़ावें—

ओं अर्हन्तं, नानार्द्ररससंपूर्णं, नैवेद्यं सर्वमुत्तमम्। जिनाग्रे ढौकितं सर्वसम्पदा मम जायताम् ॥७॥

सकलपुद्गलसङ्गविवर्जनं, सहजचेतनभावविलास-कम्। सरसभोजननव्यनिवेदनात, परमनिर्वृतिभाव-महं स्पृहे ॥७॥

ओं ह्रीं परमपरमात्मने० नैवेद्यं यजामहे स्वाहा ॥

इति सातवीं नैवेद्य पूजा ॥

फिर सोपारी, बादाम, आदि फल अथवा वर्तमान ऋतुका फल हाथमें लेकर यह मन्त्र कहे—

ॐ अर्हं हुँ, जन्मफलं स्वर्गफलं, पुण्यफलं मोक्षफलम्। दद्याज्जिनार्च्चने चैव, जिनपादाग्रसंस्थितम् ॥ ८ ॥

कटुककर्मविपाकविनाशनं, सरसपक्वफलव्रजढौकनम्। विहितमोक्षफलस्य प्रभोः पुरः, कुरुत सिद्धिफलाय महाजनाः ॥८॥

ओं ह्रीं परमपरमात्मने० फलं यजामहे स्वाहा ॥

फिर प्रभुके सामने फल चढावे उस समय मनमें यह विचारे—हे प्रभु आपकी फल पूजा करनेसे मेरेको मोक्षफल मिले।

इति आठवीं फल पूजा।

यह मन्त्र पढ़कर शेष बचे हुए सर्व द्रव्य प्रभुके आगे चढाना और मनमें ऐसा विचारना कि—हे प्रभु! आपकी अष्टप्रकारी पूजा करनेसे मेरे आठों कर्मों का नाश हो।

फिर कुसुमाञ्जलि तथा शेषद्रव्य हाथमें लेकर यह मन्त्र कहे-

इति जिनवरवृन्दं भक्तितः पूजयन्ति, सकलगुण-निधान देवचन्द्रं स्तुवन्ति । प्रतिदिवसमनन्तं तत्त्व-मुद्भासयन्ति, परमसहजरूपं मोक्षसौख्यं श्रयन्ति ॥६॥

ओं ह्रीं परमपरमात्मने० अर्घ्यं यजामहे स्वाहा ॥

इसके वाद कुसुमाञ्जलि हाथमें लेकर यह मन्त्र कहे—

ओं अर्हं भगवद्भ्यो अर्हद्भ्यो जलगन्धपुष्पा-क्षतफलनैवेद्यधूपदीपैः संप्रदानमस्तु ॥

ओं पुण्याह पुण्याहं प्रियन्तां प्रियन्तां भगवन्तोऽर्हन्त-स्त्रिलोकस्थिता नामाकृतिद्रव्यभावयुताः स्वाहा ॥

यह मन्त्र कहकर कुसुमाञ्जलि प्रभुके चरणमें चढावें ।

फिर वासक्षेप हाथमें लेकर यह मन्त्र पढ़े—

ॐ सूर्य्यसोमाङ्गारकबुधगुरुशुक्रशनैश्चरराहु-केतुमुखा ग्रहा इह जिनपदाग्रे समायान्तु पूजां प्रतीच्छन्तु ॥

इस मन्त्रसे वासक्षेप हाथमें लेकर जिन प्रतिमाको जिस पाटपर स्नान कराया है उस पाटपर वासक्षेप करना। फिर उसपर

जल चढ़ाकर अष्टद्रव्यसे पूजा करनी चाहिये । सर्व द्रव्य चढ़ाते वक्त 'अस्तु' शब्द कहना । जैसे [गन्धोऽस्तु] इस रीतिसे अष्ट द्रव्यसे पूजा करके फिर वासक्षेप हाथमें लेकर यह मन्त्र कहे ।

मन्त्रः—ॐ सूर्यसोमाङ्गारकबुधगुरुशुक्रशनिश्चरराहुकेतुमुखा ग्रहाः सुपूजिताः सन्तु, सानुग्रहाः सन्तु, तुष्टिदाः सन्तु, पुष्टिदाः सन्तु, माङ्गल्यदाः सन्तु, महोत्सवदाः सन्तु ॥

यह मन्त्र ग्रहपट पर कुसुमाञ्जली चढ़ाने का है। (एक पाट पर नवग्रहकी स्थापना करना)

फिर वासक्षेप हाथमें लेकर यह मन्त्र कहना ।

ॐ इन्द्राग्नियमनैर्ऋत्यवरुणवायुकुबेरईशाननागब्रह्माणो लोकपालाः सविनायकाः सक्षेत्रपालाः इह जिनपादाग्रे समागच्छन्तु पूजां प्रतीच्छन्तु ॥

इस मन्त्रसे वासक्षेप मन्त्रके पाटपर चढ़ाना फिर उस पर जलका धार देना और अष्ट द्रव्यसे पूजाकरके फिर हाथमें 'कुसुमाञ्जलि' लेकर यह मन्त्र पढ़ना—

मन्त्रः—ॐ इन्द्राग्नियमनैर्ऋत्यवरुणवायुकुबेर-ईशाननागब्रह्माणो लोकपालाः सविनायकाः सक्षेत्रपालाः सुपूजिताः सन्तु, सानुग्रहाः सन्तु, तुष्टिदाः सन्तु, पुष्टिदाः सन्तु, माङ्गल्याः सन्तु, महोत्सवदाः सन्तु।

इस मन्त्रसे कुसुमाञ्जलि पाटके ऊपर चढ़ाना।

अस्मत्पूर्वजा गोत्रसंभवा देवगतिगताः सुपूजिताः सन्तु, सानुग्रहाः सन्तु, तुष्टिदाः सन्तु, पुष्टिदाः सन्तु, माङ्गल्यप्रदाः सन्तु, महोत्सवप्रदाः सन्तु॥

इस मन्त्रको कहकर जिनप्रतिमाके आगे कुसुमांजलि डाले। फिर कुसुमाञ्जलि हाथमें लेकर यह मन्त्र पढ़े—

ॐ अर्हं अर्हद्भक्त्याष्टनवत्युत्तरशतदेवजातयः सदेव्यः पूजां प्रतीच्छन्तु सुपूजिताः सन्तु॥

इस मन्त्रको कहकर जिनप्रतिमाके आगे कुसुमाञ्जलि छोड़े,

फिर पुष्प हाथमें लेकर मौन होकर इस मन्त्रका स्मरण करे।

ॐ अर्हं णमो अरिहंताणं ॐ अर्हं णमो सयंसंबुद्धाणं ॐ अर्हं णमो पारगयाणं ॥

इस मन्त्रको १०८ अथवा ५४ अथवा २७ या २१ वार मनमें जपकर फूलको जिनप्रतिमाके चरणमें चढ़ावे। इस मन्त्रकी महिमा शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है।

प्रभुकी अष्ट प्रकारकी पूजा करनेके वाद जो किसीको अवकाश न हो तो ग्रहलोकादिकी पूजा न करे, अवकाश हो तो करे।

अष्ट प्रकारकी पूजा करके फिर तिसरी निस्सिही कहकर चैत्य वन्दन करके तीन वेर आवस्सहि कहकर अपने घर जावे। यदि प्रभुकी आरती करनेका भाव हो तो सात वत्तीकी आरती ऊजवाले (वारे)। फिर तीसरी निस्सिही कहकर चैत्यवन्दन करे।

॥ इति नित्यपूजनविधि सम्पूर्ण॥

श्री प्रभात सामायिक विधि ।



प्रातःकाल एक घंटा अर्थात् ढाई घड़ी रात्रिशेष रहने पर बिस्तरे परसे उठे और जो स्वर चलता हो वही पैर प्रथम भूमिपर रक्खे । अर्थात् दाहिना (जीवणा) स्वर चलता हो तो दाहिना पैर और बांया (डावा) स्वर चलता हो तो बायां पैर भूमिपर रक्खे, फिर पूर्व अथवा ईशान या उत्तरकी तरफ़ मुख करके भूमिपर बैठे तब तीन अथवा पाँच नवकार मन्त्र मनमें गिने, और चौवीस तीर्थंकरोंके नाम लेवे ।

इतना करके लघुनीति (लघुशङ्का) आदिका निवारण करे फिर हाथ पैर पानीसे शुद्ध करके धोती बदल डाले और एकान्त स्थानमें सामायिक करे। जिसकी विधि आवश्यकसूत्रानुसार श्रावकके वास्ते कहते हैं।

प्रथम चरवलेसे (जैन समुदायमें सामायिकस्थल को जीवादि से स्वच्छ करनेके लिये चौवीस अंगुल शीशम अथवा चन्दनकी लकड़ीके सिरेपर वटे हुये उनके लच्छेकी वस्तु विशेष चँवरीसे) भूमि को प्रमार्जना (साफ़) करे, फिर पाटपर अथवा ठवणी (स्थापनाचार्य जीके स्थापन करनेका आसन विशेष) पर स्थापनाचार्यजी की स्थापना करे, नहीं तो पुस्तक अथवा नवकरवाली (माला) की स्थापना करे। उस वक्त जीवना

(दाहिना) हाथ सीधा करके तीन नवकार कहकर स्थापना स्थापे *

स्थापनाचार्यजीकी पड़िलेहणके (प्रतिलेखनेके) १३ बोल नीचे लिखते हैं। यह तेरह बोल स्थापनाचार्यजी की पड़िलेहण करते समय कहना चाहिये।

शुद्ध स्वरूप धारुं ज्ञान, दर्शन, चारित्र सहित सद्दहणा शुद्धि प्ररूपणाशुद्धि दर्शनशुद्धि सहित पांच अतिचार पालुं, पलावुं, अनुमोदुं. मनोगुप्ति, वचनगुप्ति कायगुप्ति आदरूं।

यह तेरह बोल स्थापनाचार्यजीकी पड़िलेहणा करते समय चिन्तवन करे, अथवा तीन नवकार गुणके स्थापन कर देवे।

नमस्कार सूत्र।

णमो अरिहंताणं। णमो सिद्धाणं। नमो आयरियाणं। णमो उवज्झायाणं। णमो लोए सव्वसाहूणं।

---

* स्थापना करनेका अभिप्राय यह है कि गुरुमहाराजकी साक्षीसे क्रिया करना कहा है, यदि गुरु का अभाव हो तो स्थापनाचार्यजी के सामने कर ले। गुरु महाराजका आरोप तथा संकल्प करनेसे सक्षात्का फल होता है। इसका विशेष खुलासा जिनाज्ञाविधिप्रकाशमें देखो।

एसो पंचणमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो। मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ॥

अन्वयार्थ—'अरिहंताणं' अरिहंतोंको 'णमो' नमस्कार, 'सिद्धाणं' सिद्धोंको 'णमो' नमस्कार, 'आयरियाणं' आचार्योंको 'णमो' नमस्कार, 'उपज्झायाणं' उपध्यायोंको 'णमो' नमस्कार[और] 'लोए' लोकमें—ढाई द्वीपमें [वर्त्तमान] 'सव्वसाहूणं' सब साधुओं को 'णमो' नमस्कार 'एसो' यह 'पंचणमुक्कारो' पांचोंको किया हुआ नमस्कार 'सव्वपावप्पणासणो' सब पापोंका नाश करनेवाला 'च' और 'सव्वेसिं' सब 'मंगलाणं' मंगलोंमें 'पढमं' पहला—मुख्य 'मंगलं' मंगल 'हवइ' है ॥१॥

भावार्थ—श्रीअरिहन्तभगवान्, श्रीसिद्धभगवान्, श्रीआचार्य-महाराज, श्रीउपाध्याजी, और ढाई द्वीपमें वर्तमान सामान्य सब साधु मुनिराज—इन पांच परमेष्ठियोंको मेरा नमस्कार हो। उक्त पांच परमेष्ठियोंको जो नमस्कार किया जाता है वह सम्पूर्ण पापोंको नाश करनेवाला और सब प्रकारके लौकिक-लोकोत्तर-मंगलोंमें प्रधान मंगल है।

इस प्रकारसे स्थापना करके आसणको एक तरफ रख चरवला हाथमें लेकर और जीवणे हाथमें मुखवस्त्रिका* (मुहपत्ति) रखके दो वेर खमासणा देवे। जिसका पाठ यह है।

---

* मुखवस्त्रिका एक वालिस्त चार अङ्गुल लम्बे चौड़े आकार की होना चाहिये।

खमासमण सूत्र।

इच्छामि खमासमणो! वंदिउं जावणिज्जाए निसीहिआए, मत्थएण वंदामि।

अन्वयार्थ—'खमासमणो' हे क्षमाश्रमण-क्षमाशील तपस्विन्! 'निसीहिआए' सब पाप कार्यों को निषेध करके [मैं] 'जावणिज्जाए' शक्तिके अनुसारे 'वंदिउं' वन्दन करना 'इच्छामि' चाहता हूँ [और] 'मत्थएण' मस्तकसे 'वंदामि' वन्दन करता हूँ।

भावार्थ—हे क्षमाशील गुरो! मैं अन्य सब कामोंको छोड़कर शक्तिके अनुसार आपकी वन्दना करना चाहता हूँ और उसके अनुसार सिर झुकाकर वन्दन करता हूँ।

इस प्रकार दो खमासण देकर आचार्यमहाराजके शरीर सम्बन्धी सुखसाता अर्धनम्र खड़ा होकर पूछे—उसका पाठ लिखते हैं—

सुगुरु को सुखशान्तिपृच्छा।

इच्छकार भगवान् सुहराइ सुहदेवसि सुखतप शरीर निराबाध सुखसंयमयात्रा निर्वहते हो जी स्वामिन् शान्ति है जी।

भावार्थ—मैं समझता हूँ कि आपकी रात सुखपूर्वक बीती

होगी दिन भी सुखपूर्वक बीता होगा, आपकी तपश्चर्य्या सुखपूर्वक पूर्ण हुई होगी, आपके शरीरको किसी तरहकी बाधा न हुई होगी, और इससे आप संयमयात्राका अच्छी तरह निर्वाह करते होंगे। हे स्वामिन्! कुशल है!

फिर एक खमासरण देकर दोनों गोड़ालिये (दोनों पैर मोड़कर) बैठकर चरवला दोनों जंघाके बीचमें रखके मस्तक जीवणे हाथके ऊपर रखके मुखपति डावे (बायें) हाथसे मुखके आगे रखके अब्भुठियाका पाठ कहे सो पाठ लिखते हैं।

अब्भुट्ठियो [गुरुखामणा] सूत्र।

इच्छाकारेण संदिसह भगवन्! अब्भुट्ठिओमि अब्भिंतरदेवसिअं खामेउं।* इच्छं खामेमि देवसिअं।

जं किंचि अपत्तिअं, परपत्तिअं, भत्ते, पाणे, विणाये, वेआवच्चे, आलावे, संलावे, उच्चासणे, समासणे, अंतरभासाए, उवरिभासाए, जं किंचि मज्झ

---

* वड़ी फजर 'राइयं खामेउं' कहना और सायंकालको देवसियं खामेउ" यह पाठ कहना

विणयपरिहीणं सुहुमं वा बायरं वा तुब्भे जाणामि, तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

अन्वयार्थ—'अहं' मैं 'अब्भिंतरदेवसिअं' दिनके अन्दर किये हुए अपराध को 'खामेउं' खमाने के लिये 'अब्भुट्ठिओ' तत्पर हुआ हूँ, इस लिये 'भगवान्' हे गुरो ! [आप] "इच्छाकारेण" इच्छापूर्वक 'संदिसह' आज्ञा दीजिए।

'इच्छं' आपकी आज्ञा प्रमाण है। 'खामेमि देवसिअं' अब मैं दैनिक अपराध को खमाता हूँ।

हे गुरो ! 'जं किंचि' जो कुछ 'अपत्तिअं' अप्रीति या 'परपत्तिअं' विशेष अप्रीति [हुई उसका पाप निष्फल हो] तथा 'भत्ते' आहार में 'पाणे' पानी में 'वेआवच्चे' सेवा-शुश्रुषा में 'आलावे' एक बार बोलने में 'संलावे' बार बार बोलने में 'उच्चासणे' ऊँचे आसन पर बैठनेमें 'समासणे' बराबरके आसन पर बैठने में 'अंतरभासाए' भाषण के बीच बोलनेमें या 'उवरिभासाए' भाषण के बाद बोलने में 'मज्झ' मुझ से 'सुहुमं' सूक्ष्म 'वा' अथवा 'बायरं' स्थूल 'जं किंचि' जो कुछ 'विनयपरिहीणं' अविनय हुई जिसको 'तुब्भे' तुम 'जाणह' जानते हो 'अहं' मैं 'न' नहीं 'जाणामि' जानता हूं 'तस्स' उसका 'दुक्कडं' पाप 'मि' मेरे लिये 'मिच्छा' मिथ्या हो।

भावार्थ—हे गुरो ! मुझ से जो कुछ सामान्य या विशेष रूप से अप्रीति हुई उसके लिये मिच्छा मि दुक्कडं। इसी तरह आपके

अहार पानी के विषय में या विनय वैयावृत्य के विषय में, आपके साथ एक बार बात-चीत करने में या अनेक बार बात-चीत करने में, आपसे ऊँचे आसन पर बैठने में या बराबर के आसन पर बैठने में, आपके संभाषण के बीच या बाद बोलने में, मुझ से थोड़ी बहुत जो कुछ अविनय हुई, उसकी मैं माफी चाहता हूं।

अब्भुठिया खमाय (क्षमा) के एक खमासण देवे उस समय कहे कि "इच्छाकारेण संदिस्सह भगवन् सामयिक लेनेकी मुहपत्ति पडिलेहु"

इतना कह कर फिर एक खमासण (पञ्चाङ्ग प्रणाम) देकर उक्कडु बैठकर मुखपत्ति पडिलेहे (मार्जन मुखवस्त्रिकासे) उस समय पच्चीस बोल मुहपत्तिकी पडिलेहण के चिन्तवन करे सो लिखते हैं।

२५ बोल

इसके बाद शरीरको २५ पडिलेहणा करे सो शरीरकी पडि लहणके २५ बोल लिखते हैं।

२५ बोल मुखपत्तिके

सूत्र, अर्थ सच्चा, सर्दहु १ सम्यकत्वमोहनीय, २ मिथ्यात्व-मोहनीय ३ मिश्रमोहनीय , परिहरु।

कामराग, १ स्नेहराग, २ दृष्टिराग, ३ परिहरू। यह सात बोल मुखवस्त्रिका खोलते समय कहना चाहिये।

ज्ञानविराधना १ दर्शनविराधना २ चरित्रविराधना ३ परिहरूं। मनोगुप्ति१ वचनगुप्ति २ कायगुप्ति ३ आदरूं।

मनोदण्ड १ वच्तनदण्ड २ कायदण्ड ३ परिहरूं।

(यह नव पडिलेहणा जीवणे हाथे करना।)

सुगुरु १ सुदेव२ सुधर्म ३ आदरूं। कुगुरु १ कुदेव २ कुधर्म परिहरु। ज्ञान १ दर्शन २ चारित्र ३ आदरूं

यह नव पडिलेहण डावे हाथ करना चाहिये।

अंगका पडिलेहनके २५ बोल *

यह बोल कहते समय जिस स्थानका नाम लिखा है उस स्थानपर मुहपत्ति (मुखवस्त्रिका) रखते जावे।

---

*पडिलेहणमें बोल चिन्तवन करनेका प्रयोजन यह है कि शुभ अथवा अशुभ रागद्वेषकी प्रवृति प्रथम परिणामोंकी धारासे उत्पन्न होती है फिर वचन और कायासे प्रगट होती हैं, इसीलिये नैगमनयकी अपेक्षासे प्रथम संकल्प, आरोप, और अंश रूप कार्यको पूर्णरूपसे माना गया है, तो जिस तरह मनद्वारा, प्रथम राग द्वेपका संकल्प उठता है, उसी प्रकारसे मनद्वारा ही उसका पश्चात्ताप करनेसे आत्मा शुद्ध हो जाती हैं। इसीलिये इन वोलोंके चिन्तवन करनेसे कर्मपरमाणुओंका समूह आत्मासे अलग होकर शुद्धता होती है। विशेष खुलासा सद्गुरुसे समझना चाहिये। यहां तो किंचित् आशय दिखाया है।

कृष्णलेश्या १ नील लेश्या २ कापोतलेश्या ३ परिहरूं। (मस्तके) ऋद्धिगारव १ रसगारव २ शातागारवं ३ परिहरूं। (मुखे) मायाशल्य १ नियाणशल्य २ मिथ्यादर्शनशल्य ३ परिहरूं (हृदये) क्रोध १ मान २ परिहरूं। जीवना कन्धा (दहिना कन्धा).

माया १ लोभ २ परिहरुं। डावा कन्धा (बांया) कन्धा हास्य १ रति २ अरति ३ परिहरुं। डावा (बांया हाथ) भय १ शोक २ दुगंछा ३ परिहरूं। जीवना (दाहिना) हाथ, पृथ्वीकाय १ अप्पकाय २ तेऊकाय ३ परिहरूं। डावा (बांया) पग, वायुकाय १ वनस्पतिकाय २ त्रसकाय ३ परिहरुं। (जीवना पग)

मुखवस्त्रिका पडिलेह कर खड़ा हो जाय, और १ खमासण देकर कहे कि-इच्छाकारेण संदिस्सह भगवन् सामयिक संदिस्सावुं। फिर एक खमासण देकर कहे कि:—"इच्छाकारेण संदिस्सह भगवन् सामायिक ठाउं" इतना कहकर अर्द्धनम्र खड़ा रहे कि तीन नवकार कहे। फिर खमासण देकर अर्धानम्र खड़ा होकर कहे कि "इच्छाकारेण संदिस्सह भगवन् पसायकरी सामयिक दंड उच्चरावोजो" इतना कहकर तीन बेर सामयिक दण्ड स्वतः गुरुमहाराजकी आज्ञा लेकर उच्चारण करे। अगर गुरुमहाराज सामायिक दण्ड उच्चारण करें तो भी स्वयं मनमें तीन वेर पाठ उच्चारण करे। क्योंकि वर्तमान कालमें ऐसी ही प्रवृत्ति चल रही है। इस कारण इतना खुलासा करना पड़ा है। कि करेमि भंते का पाठ गुरु उच्चरावे तो भी स्वयं जरूर मनमें उच्चारण करे, इस

विषयमें विशेष शंका समाधान श्रीमद् चिदानन्दजीमहाराजकृत 'जिनाज्ञाविधिप्रकाश' ग्रन्थके छठे प्रकाशमें किया है। वहांसे देखो।



अब सामायिकदण्डका पाठ लिखते है ।

सामायिक सूत्र ।*

करेमि भंते ! सामाइयं, सावज्ज जोगं पच्चक्खामि, जावनियमं पज्जुवासामि, दुविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि, तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥

---

*करेमि भंते के पाठ आवश्यकवृत्तिमें तथा चूर्णीमें तीन प्रकारके कहे हैं ।

१—प्रथम पाठमें जाव (जहांतक) नियमं पज्जुवासामि पाठ है । सो इस नियमशब्दसे दो घड़ी (४८ मिनट) का काल (समय) लिया है । यह पाठ श्रावक घरमें अथवा पौषध-शाला (धर्मकृत्यस्थान) में सामायिक करे उस समय कहे ।

२ दूसरा पाठ "जाव साहू पज्जुवासामि" है इस पाठके कहनेका प्रयोजन यह है कि श्रावक साधु मुनिके व्याख्यानमें सामायिक करनेकी इच्छा करे तो उस समय यह पाठ उच्चारण करे, क्योंकि कदाचित् वह 'जावनियमं' को पाठ उच्चारेगा तो दो घड़ी काल सम्पूर्ण होनेसे उसको सामायिक अवश्यमेव पारना

अन्वयार्थ—'भंते' हे भगवन् [मैं] 'सामाइयं' सामायिक व्रत 'करेमि' करता हूं [और] 'सावज्जं' पापसहित 'योगं' व्यापारका 'पच्चक्खामि' प्रत्याख्यान—त्याग करता हूं। 'जाव' जबतक [मैं] 'नियमं' इस नियमका 'पज्जुवासामि' पर्युपासन—सेवन करता रहूं [तब तक] 'तिविहेणं' तीन प्रकारके [योगसे] अर्थात् 'मणेणं वायाए काएणं' मन, वचन, काया से 'दुविहं' दो प्रकारका [त्याग करता हूं]।

पड़ेगा; तो मुनिराजके व्याख्यानमें आत्मविचारका विषय चलने से जो आनन्द आरहा है वह सामायिक पारनेकी क्रियामें चित्त जानेसे जाता रहेगा।

चूंकि आत्मानन्दका रस गया हुआ बड़ी कठिनाईसे आता है। क्योंकि यह जीव अनादिकालसे विषयादि आनन्दमें मग्न रहता है और आत्मानन्द इस जीवको विरस लगता है। तो अब विचार करना चाहिये कि संसारी कार्यमें भी जो विषय चल रहा हो उसको छोड़कर दूसरे विषयमें प्रवृत होनेसे पहले विषयका रस यथावत् नहीं आता है। तो फिर जो विषय अनादि कालको असैंधा (अनजान) है उसका पीछे आना कितना मुश्किल है। इसी अपेक्षासे सर्वज्ञदेवने भव्यजीवोंके उपकारके वास्ते साधु मुनिराजके सम्मुख श्रावकको 'जाव साहू पज्जुवासामि" ऐसा पाठ उच्चारण करना फरमाया है। इस पाठसे कालका नियम न रहा, जबतक गुरू महाराजके सम्मुख बैठा

अर्थात् 'न करेमि' [सावद्य योगको] न करूंगा [और] 'न कारवेमि' न कराऊंगा। 'भंते' हे स्वामिन्! 'तस्स' उससे—प्रथमके पापसे [मैं] 'पडिक्कमामि' निवृत्त होता हूं, 'निन्दामि' [उसकी] निन्दा करता हूं [और] 'गरिहामि' गर्हा—विशेष निन्दा करता हूं, अप्पाणं आत्माको [उस पाप-व्यापारसे] 'वोसिरामि' हटाता हूं।

रहे तबतक सामायिक (आत्मविचारमें लीन होना) है। विशेष खुलासा उपरोक्तग्रन्थमें देखो।

३ तीसरा पाठ "जावचेइयं पज्जुवासामि" है इसके लिये भी उपरोक्त युक्ति समझ लेनी चाहिये। किंचित् खुलासा करते हैं:—जिस समय श्रावक श्रीपरमात्माके दर्शन करनेको जावे उस समय द्रव्यक्रिया (द्रव्योपचार सहित पूजा) करके सामायिक करनेकी इच्छा हो तो उपरोक्त पाठ कहे। इसमें भी कालका नियम नहीं है, जबतक चित्तकी वृत्ति प्रभुके गुण तथा आत्मगुण विचारनेमें ठहरे तबतक सामायिकमें रहे फिर पार लेवे (समाप्त करे)

यहाँ सामायिकका शब्दार्थ भव्यजीवोंको समझनेके वास्ते करना उपयोगी है। इसमें दो शब्द हैं 'सम ओर आय' इसका भावार्थ यह है कि सम कहनेसे सारे जीवोंपर राग द्वेषसे रहित परिणाम रखना। और आयका अर्थ लाभ है। यही सामायिक का भावार्थ है। जितनी देर आत्मा समभावमें रहेगा उतने काल पर्यन्त जो कर्म आत्मासे लगे हुये हैं, वह तो आत्म प्रदेशोंसे अलग

भावार्थ—मैं सामायिकव्रत ग्रहण करता हूं। राग द्वेषका अभाव या ज्ञान-दर्शन-चारित्रका लाभ ही सामायिक है, इसलिये पापवाले व्यापारोंका मैं त्याग करता हूं।

हो जावेंगे और नये कर्म रूक जावेंगे। उस समय आत्माके अनन्त गुणोंमेंसे सम्यक्त्वगुण प्रगट होगा, सम्यक्त गुण प्रगट होनेसे आत्मा का एक अंश प्रगट होनेको नीव लग गई। जैसे मकान बनाने वाला पहले नीव मजबूत लगावेगा तो मकान मज़बूत बनेगा। इसी रीतिसे जिस जीवने समकित (जिसके ऐसे कषायाध्यवसाय हो कि जिसके उत्कटसे भी उत्कट कषाय बारह मासके भीतर ही शान्त होजाय) प्राप्त करलीया उसकी हर एक क्रिया सफल होगी।

समकितके पांच लक्षण हरेक आत्मार्थिको उपयोगमें रखने चाहिये। इसका किञ्चित् खुलासा करते हैं।

१—सम, अर्थात्-सर्व प्राणी मात्रके ऊपर समभाव रखना अर्थात् अपने दुश्मनपर भी अन्तःकरणसे क्षमा।

२—सम्वेग, अर्थात् जन्म मरणसे छूटकर अजर, अमर, अव्याबाध सुख है जहां, ऐसे मोक्ष प्राप्त करनेकी प्रबल अभिलाषा रखना तथा चित्तकी वृत्तिको निर्मल रखना।

३—निर्वेद,-अर्थात्-संसारका भय यानी यह दुःखरूपी संसारसे कब छूटूं। क्योंकि धन, स्त्री, पुत्र, स्वजन, सम्बन्धी यहाँतक कि यह शरीर भी मेरा नहीं है। ऐसे दुःख देने वाले सम्बन्धोसे कब छूटूं; ऐसा विचार करना निर्वेद कहलाता है।

जब तक मैं इस नियमका पालन करता रहूं तबतक मन वचन और शरीर इन तीन साधनोंसे पाप-व्यापारको न स्वयं करूंगा और न दूसरोंसे कराऊंगा।

हे स्वामिन्! पूर्व-कृत पापसे मैं निवृत्त होता हूं, अपने हृदयमें उसे बुरा समझता हूं और गुरूके सामने उसकी निन्दा करता हूं। इस प्रकार मैं अपने आत्माको पाप-क्रियासे छूड़ाता हूं।

४—अनुकम्पा, इसको करूणा भी कहते हैं और दया भी कहते हैं, भवार्थ यह है कि किसी भी जीवको किसी प्रकारसे दुःखी देखकर उसका दुःख दूर करनेकी चित्तमें प्रबल इच्छाका होना अनुकम्पा है।

५—आस्तिक्य, अर्थात् श्रीवीतरागके वचनोंपर पूर्ण श्रद्धाका होना आस्तिकता है। क्योंकि वीतराग उसीको कहते हैं कि जिसके राग, द्वेष, मोह सम्पूर्ण क्षय हो गये हों। जिसके राग द्वेष नष्ट हो गये उनको असत्य बोलनेका कोई प्रयोजन नहीं रहा, इसीलिये सच्चे आप्त वे ही हैं। उनके वचनमें शंकाका न होना ही आस्तिकता है।

इन पाँच लक्षणोंसे समकितके प्राप्तिकी प्रतीति व्यवहारसे अन्य लोगोंको होती है। सो भव्यजीवोंको इन गुणोंके प्रगट करनेमें पूर्ण लक्ष (ध्यान) रखना चाहिये, इसका विशेष वर्णन सिद्धान्तो द्वारा गुरूगमसे समझना चाहिये। यहाँ तो संक्षेपसे दिखाया है।

यह पाठ तीन वार कहकर एक खमासण (पञ्चाङ्ग प्रणाम देवे। फिर 'ई० स० भ० इरियावाहियं पडिक्कमामि' इतना कहकर पाठ कहे।

इरियावहियं सूत्र।

इच्छाकारेण संदिसह भगवन्! इरियावहियं पडिक्कमामि। इच्छं।

इच्छामि पडिक्कमिउं इरियावहियाए विराहणाए, गमणागमणे, पाणक्कमणे, बीयक्कमणे, हरियक्कमणे, ओसा-उत्तिंग-पणग-दग-मट्टी-मक्कडासंताणा-संकमणे जे मे जीवा विराहिया-एगिंदिया, बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया पंचिंदिया, अभिहया, वत्तिया, लेसिया, संघाइया, संघट्टिया, परियाविया, किलामिया, उद्दविया, ठाणाओ

ठाणं संकामिया, जीवियाओ ववरोविया तस्स मिच्छा मि दुक्कडं॥

अन्वयार्थ—'भगवन्' हे गुरु महाराज! 'इच्छाकारेण' इच्छा से-इच्छापूर्वक 'संदिसह' आज्ञा दीजिये [जिससे में] 'इरियाहियं' ईर्यापथिकी क्रियाका 'पडिक्कमामि' प्रतिक्रमण करूं। 'इच्छं' आज्ञा प्रमाण है। 'इरियावहियाए' ईर्यापथ-सम्बन्धिनी-रास्तेपर चलने आदिसे होनेवाली 'विराहणाए' विराधनासे 'पडिक्कमिउं' निवृत्त होना—हटना वचना 'इच्छामि' चाहता हूं [तथा] 'मे' मैंने 'गमणागमणे' जाने आनेमें 'पाणक्कमणे' किसी प्राणीको दवाकर 'वीयक्कमणे' वीजको दवाकर 'हरियक्कयणे' वनस्पत्तिको दवाकर [या] 'ओसा' ओस 'उत्तिंग' चींटीके विल 'पणग' पांच रंगकी काई 'दग' पानी 'मट्टी' मिट्टी और 'मक्कडासंताणा' मकड़ीके जालों को 'संकमणे' खूंद व कुचल कर 'जे' जिस किसी प्रकारके—एगिंदिया' एक इन्द्रियवाले 'वेइन्दिया' दो इन्द्रियवाले 'तेइन्दिया' तीन इन्द्रियवाले 'चउरिन्द्रिया' चार इन्द्रिवाले [या] 'पंचिंद्रिया' पांच इन्द्रियवाले—'जीवा' जीवोंको 'विराहिया' पीड़ित किया हो, अभिहया' चोट पहुंचाई हो, 'वत्तिया' धूल आदिसे ढांका हो, 'लेसिया' आपसमें अथवा जमीन पर मसला हो, 'संघाइया' इकट्ठा किया हो, 'संघट्टिया' छूआ हो, 'परियाविया' परिताप-कष्ट पहुंचाया हो, 'किलामिया' थकाया हो, 'उद्दविया' हैरान किया हो, 'ठाणाओ' एक जगहसे 'ठाणं' दूसरी जगह 'संका-

मिया' रक्खा हो, [विशेष क्या, किसी तरहसे उनको] 'जीवि-याओ' जीवनसे 'ववरोविया' छुड़ाया हो 'तस्स' उसका 'दुक्कडं' पाप 'मि' मेरे लिये 'मिच्छा निष्फल हो।

भावार्थ—रास्ते पर चलने—फिरने आदिसे जो विराधना होती है उससे या उससे लगने वाले अतिचारसे मैं निवृत्त होना चाहता हूं अर्थात् आयंदा ऐसी विराधना न हो इस विषयमें सावधानी रखकर उससे बचना चाहता हूं।

जाते आते मैंने भूतकालमें किसीके इन्द्रिय आदि प्राणोंको दबाकर, सचित्त बीज तथा हरी वनस्पतिको कचर कर, ओस, चीटीके बिल; पांचों वर्णकी काई, सचित्त जल, सचित्त मिट्टी और मकड़ीके जालोंको रौंदकर किसी जीवकी हिंसा की हो–जैसे एक इन्द्रिय वाले, दो इन्द्रिय वाले, तीन इन्द्रिय वाले, चार इन्द्रिय वाले, या पांच इन्द्रियवाले, जीवोंको मैंने चोट पहुंचाई, हो उन्हें धूल आदिसे ढांका हो, जमीनपर या आपसमें रगड़ा हो, इकट्ठा करके उनका ढेर किया हो, उन्हें क्लेशजनक रीतिसे छुआ हो; क्लेश पहुंचाया हो, थकाया हो, हैरान किया हो, एक जगहसे दूसरी जगह उन्हें बुरी तरह रक्खा हो, इस प्रकार किसी भी तर-हसे उनका जीवन नष्ट किया हो उसका पाप मेरे लिये निष्फल हो अर्थात् जानते अनजानते विराधना आदिसे कषायद्वारा मैंने जो पाप-कर्म बांधा उसके लिये मैं हृदयसे पछताता हूं, जिससे कि कोमल परिणाम द्वारा पाप-कर्म नीरस हो जावे और मुझको उसका फल भोगना न पड़े।

६-तस्स उत्तरी सूत्र।

❀ तस्स उत्तरीकरणेणं, पायच्छित्तकरणेणं, विसोहीकरणेणं, विसल्लीकरणेणं, पावाणं कम्माणं निग्घायणट्ठाए ठामि काउसग्गं॥

अन्वयार्थ—'तस्स' उसको 'उत्तरीकरणेणं' श्रेष्ट—उत्कृष्ट बनानेके निमित्त 'पायच्छित्तकरणेणं' प्रायश्चित्त—आलोचना करने के लिये 'विसोहीकरणेणं' विशेष शुद्धि करने के लिये 'विसल्लीकरणेणं' शल्यका त्याग करने के लिये और 'पावाणं' पाप 'कम्माणं' कर्मोंका 'निग्घायणट्ठाए' नाश करने के लिये 'काउसग्गं 'ठामि' करता हूं।

भावार्थ—ईर्यापथिकी क्रियासे पाप-मल लगने के कारण आत्मा मलिन हुआ, इसकी शुद्धि मैंने 'मिच्छा मि दुक्कडं' द्वारा की है तथापि परिणाम पूर्ण शुद्ध न होनेसे वह अधिक निर्मल न हुआ हो तो उसको अधिक निर्मल बनाने के निमित्त उस पर बार बार अच्छे संस्कार डालने चाहिये। इसके लिये प्रायश्चित्त करना आवश्यक है! प्रायश्चित भी परिणाम की विशुद्धि के सिवाय नहीं हो सकता इसलिये परिणाम विशुद्धि आवश्यक है। परिणाम की विशुद्धताके लिये शल्यों का त्याग करना जरूरी हैं। शल्यों का त्याग और अन्य सब पाप कर्मों का नाश काउसग्ग से ही हो सकता है। इसलिये मैं काउ-स्सग्ग करता हूं।

७—अन्नत्थ ऊससिएणं सूत्र।

❀ अन्नत्थ ऊससिएणं, नीससिएणं खासिएणं, छीएणं, जंभाइएणं, उड्डुएणं, वायनिसग्गेणं भमलीए, पित्तमुच्छाए सुहुमेहिं अंगसंचालेहिं, सुहुमेहिं खेलसंचालेहिं, सुहुमेहिं दिट्ठिसंचालेहिं एवमाइएहिं आगारेहिं अभग्गो अविराहिओ हुज्ज मे काउसग्गो।

जाव अरिहंताणं भगवंताणं नमुक्कारेणं न पारेमि ताव कायं ठाणेणं मोणेणं झाणेणं अप्पा वोसिरामि॥

अन्वयार्थ—'ऊससिएणं' उच्छ्वास 'नीससिएणं' निःश्वास 'खासिएणं' खाँसी 'छीएणं' छींक 'जंभाइएणं' जँभाई-उबासी 'उड्डुएणं' डकार 'वायनिसग्गेणं' वायु का सरना 'भमलीए' सिर आदि का चकराना 'पित्तमुच्छाए' पित्त-विकार की मूर्च्छा 'सुहुमेहिं' सूक्ष्म 'अङ्गसंचालेहिं' अङ्ग-सञ्चार 'सुहुमेहिं खेलसंचालेहिं' सूक्ष्म कफ-सञ्चार 'सुहुमेहिं दिट्ठीसञ्चालेहिं' सूक्ष्म दृष्टि सञ्चार 'एवमाइएहिं' इत्यादि 'आगारेहिं' आगारों

से ' अन्नत्थ' अन्य क्रियाओं के द्वारा ' में ' मेरा ' काउस्सग्गो ' कायोत्सर्ग 'अभग्गो ' अभंग [तथा] ' अविराहिओ ' अखण्डित ' हुज्ज ' हो।

' जाव ' जब तक ' अरिहन्ताणं ' अरिहन्त ' भगवन्ताणं ' भगवान्की 'नमुक्कारेणं' नमस्कार करके [कायोत्सर्ग] 'नपारेमि' न पारू ' ताव ' तव तक ' ठाणेणं ' स्थिर रह कर ' मोणेणं ' मौन रहकर ' झाणेणं ' ध्यान धर कर ' अप्पाणं ' अपने ' कायं' शरीर को [अशुभ व्यापारों से] ' वोसिरामि ' अलग करता हूं।

भावार्थ—(कुछ आगारो का कथन तथा काउसग्ग के अखण्डितपने की चाह)। श्वास का लेना तथा निकालना, खांसना, छीकना जभाई लेना, डकारना अपान वायुका सरना सिर आदि का घुमना, पित्त विगड़नेसे मूर्च्छा का होना अङ्गका सूक्ष्म हलन चलन, कफ़-थूक आदि का सूक्ष्म झरना, दृष्टिका सूक्ष्म सञ्चलन–ये तथा ईनके सदृश अन्य क्रियाए जो स्वयमेव हुआं करती हैं और जिनके रोकने से अशान्ति का सम्भव हैं उनके होते रहने पर भी काउसग्ग अभङ्ग ही है। परन्तु इनके सिवाय अन्य क्रियाए जो आप ही आप नहीं होती—जिनका करना रोकना इच्छाके आधीन है-उन क्रियाओंसे मेरा कायोत्सर्ग अखण्डित रहे अर्थात अपवाद भूत क्रियाओं के सिवाय अन्य कोई भी क्रिया मुझसे न हो और इससे मेरा काउसग्ग सर्वथा अभङ्ग रहे यही मेरी अभिलाषा है।

(काउसग्ग को काल-परिमाण तथा उसकी प्रतिज्ञा)। मैं

अरिहन्त भगवान्‌को 'नमो अरिहन्ताणं' शब्द द्वारा नमस्कार करके काउसग्ग को पुर्ण न करू तब तक शरीरसे निश्चल वन कर वचनसे मौन रह कर और मनसे शुभ ध्यान धर कर पापकारी सब कामोंसे हट जाता हूं—कायोत्सर्ग करता हूं।'

इतना पाठ कहकर एक लोगस्स या चार नवकारका कायोत्सर्ग करे।

कायोत्सर्ग पारके एक लोगस्स प्रगट कहे सो लोगस्सका पाठ लिखते हैं।

लोगस्स सूत्र।

लोगस्स उज्जोअगरे, धम्मतित्थयरे जिणे।
अरिहंते कित्तइस्सं, चउवीसं पि केवली ॥१॥
उसभमजिअं च वंदे, संभवमभिणंदणं च सुमइं च।
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चन्दप्पहं वंदे ॥२॥
सुविहिं च पुप्फदंतं, सीअलसिज्जंसवासुपुज्जं च।
विमलमणंतं च जिणं, धम्मं संतिं च वंदामि ॥३॥
कुंथुं अरं च मल्लिं, वंदे मुणिसुव्वयं नमिजिणं च।
वंदामि रिट्ठनेमिं, पासं तह वद्धमाणं च ॥४॥

एवं मए अभिथुआ, विहुयरयमला पहीणजरमरणा।
चउवीसंपि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु ॥५॥
कित्तियवंदियमहिया, जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा।
आरुग्गबोहिलाभं, समाहिवरमुत्तमं दिंतु ॥६॥
चंदेसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा।
सागरवरगंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥७॥

अन्वयार्थ—'लोगस्स' लोकमें 'उज्जोअगरे' उद्द्योत-प्रकाश करनेवाले 'धम्मतित्थयरे' धर्मरूप तीर्थको स्थापन करनेवाले, 'जिणे' राग-द्वेषकुं जीतनेवाले, 'चउवीसंपि' चौवीसों, 'केवली' केवलज्ञानी 'अरिहंते' तीर्थंकरोंका 'कित्तइस्सं' मैं स्तवन करूंगा ॥१॥ 'उसभं' श्रीऋषभदेव स्वामीको 'च' और 'अजिअं' श्रीअजित-नाथको 'वंदे' वन्दन करता हूं 'संभवं श्रीसंभवनाथस्वामीको 'च' ओर 'अभिणंदणं' श्रीअभिनन्दन स्वामीको, 'च' और 'सुमइ'' श्रीसुमतिनाथ प्रभु को, 'पउमप्पहं' श्रीपद्मप्रभु स्वामीको, 'सुपासं श्रीसुपार्श्वनाथ भगवान्‌को 'च' और 'चंदप्पहं' श्रीच-न्द्रप्रभ 'जिणं' जिनको 'वन्दन करता हूं। 'सुविहिं' श्रीसुविधि-नाथ-[दूसरा नाम] 'पुप्फदंतं' श्रीपुष्पदन्त भगवान्‌को, 'सीअल' श्रीशीतलनाथको, सिज्जंस' श्रीश्रेयांसनाथको, 'च' ओर 'वासु-पुज्ज'' श्रीवासुपूज्यको, 'विमलं' श्रीविमलनाको, 'च' अणंतं'

श्रीअनन्तनाथको, 'धम्मं' श्रीधर्मनाथ 'जिणं' जिनेश्वरको, संतिं' श्रीशान्तिनाथको 'वंदामि' वन्दन करता हूं। कुंथुं' श्रीकुन्थुनाथको, 'च' और 'अरं' श्रीअरनाथको, मल्लिं' श्रीमल्लिनाथको, 'मुणिसुव्वयं' श्रीमुनिसुव्रतको, 'च' और 'नमिजिणं' श्रीनमिनाथ जिनेश्वरको 'वंदे' वन्दन करता हूं। 'रिट्ठनेमिं' श्रीअरिष्टनेमि श्रीनेमिनाथको 'पासं' श्रीपार्श्वनाथको 'तह' तथा 'वद्धमाणं' श्रीवर्द्धमान—श्रीमहावीर भगवान्‌को 'वंदामि' वन्दन करता हूं ॥२-४॥

'एवं' इसप्रकार 'मए' मेरे द्वारा 'अभिथुआ' स्तवन किये गये. 'विहूयरयमला' पाप रूप-रजके मलसे विहीन, अर्थात्—दूर किया है पापरूप रजका मेल जिसने 'पहीणजरमरणा' बुढ़ापे तथा मरणसे मुक्त, 'तित्थयरा' तीर्थके प्रवर्त्तक 'चउसंपि' चौवीसों 'जिणवरा' जिनेश्वरदेव 'मे' मेरे पर 'पसीयंतु' प्रसन्न हों ॥ ५ ॥

'जे' जो 'लोगस्स' लोकमें 'उत्तमा' प्रधान [तथा] 'सिद्ध' सिद्ध हैं [और जो] 'कित्तिय-वंदिय-महिया' कीर्त्तन' वन्दन तथा पूजनको प्राप्त हुए हैं 'ए' वे [मुझको] 'आरुग्गबोहिलाभं' आरोग्य तथा धर्म का लाभ [और] उत्तमं' उत्तमं समाहिवरं' समाधिका वर 'दिंतु' देवें ॥६॥

'चंदेसु' चन्द्रोंसे 'निम्मलयरा' विशेप निर्मल, आइच्चेसु' सूर्योंसे भी अहियं' अधिक 'पयासयरा' प्रकाश करनेवाले [और] 'सागरवरगंभीरा' महासमुद्रके समान गम्भीर 'सिद्धा' सिद्ध भगवान् 'मम' मुझको सिद्धिं' सिद्धि-मोक्ष को 'दिसंतु' देवे ॥७॥

भावार्थ—(तीर्थङ्करोंके स्तवनकी प्रतिज्ञा) स्वर्ग, मृत्यु और

धाताऽ–तीनों जगत्में धर्मका उद्द्योत करनेवाले, धर्म–तीर्थकी स्थापना करनेवाले और राग-द्वेष आदि अन्तरङ्ग शत्रुओंपर विजय पानेवाले चौवीसों केवल ज्ञानी तीर्थंकरोंका मैं स्तवन करूंगा ॥१॥

(स्तवन)। श्रीऋषभनाथ, श्रीअजितनाथ, श्रीसंभवनाथ, श्रीअभिनन्दन, श्रीसुमतिनाथ, श्रीपद्मप्रभ, श्रीसुपार्श्वनाथ, श्रीचन्द्रप्रभ, श्रीसुविधिनाथ, श्रीशीतलनाथ, श्रीश्रेयांसनाथ, श्रीवासुपूज्य, श्रीविमलनाथ, श्रीअनन्तनाथ, श्रीधर्मनाथ, श्रीशान्तिनाथ, श्रीकुन्थुनाथ, श्रीअरनाथ, श्रीमल्लिनाथ, श्रीमुनिसुव्रत, श्रीनमिनाथ, श्रीअरिष्टनेमि, श्रीपार्श्वनाथ और श्रीमहावीर स्वामी इन चौवीस जिनेश्वरोंकी मैं स्तुति—वन्दना करता हूं ॥२-४॥

(भगवानसे प्रार्थना) जिनकी मैंने स्तुति की है, जो कर्ममलसे रहित हैं, जो जरा मरण दोनोंसे मुक्त हैं, और जो तीर्थके प्रवर्त्तक हैं वे चौवीसों जिनेश्वर मेरे पर प्रसन्न हों—उनके आलम्बनसे मुझमें प्रसन्नता हो ॥ ५ ॥

जिनका कीर्तन, वन्दन और पूजन नरेन्द्रों, नागेन्द्रों तथा देवेन्द्रों तकने किया है, जो सम्पूर्ण लोकमें उत्तम हैं और जो सिद्धिको प्राप्त हुए हैं वे भगवान् मुझको आरोग्य; सम्यक्त्व तथा समाधिका श्रेष्ठ वर देवें—उनके आलम्बनसे बल पाकर मैं आरोग्य आदिका लाभ करूं ॥ ३ ॥

सिद्ध भगवान जो सब चन्द्रोंसे विशेष निर्मल हैं, सब सूर्योंसे विशेष प्रकाशमान हैं और स्वयंभूरमण नामक महा–

समुद्रके समान गम्भीर हैं; उनके आलम्बनसे मुझको सिद्धि-मोक्ष-प्राप्त हो ॥७॥

(१) इस जगह कायोत्सर्ग में इरियावहीके १८२४१२० मिथ्यादुष्कृतका विचार करना कहा है। परन्तु इसको यथार्थक्रिया गुरुगमसे प्राप्त न होनेसे यहां प्रवृति मार्गमें एक लोगस्सका काउसग्ग कहा हैं। सो यही करे।*

---

*कायोत्सर्ग १६ दोष टालकर करना चाहिये। सो यहां १६ दोष लिखते है।

१—घोड़ेकी तरह एक पैरके ऊपर शरीरका भार रखके दूसरा पैर बांका करके रहे।

२—जैसे हवासे लता (वेल) इधर उधर डोलती है उसी तरह वार २ शरीरको चलायमान करे।

३—स्तम्भ अथवा भीत (दीवालके) सहारेसे अड़कर काउसग्ग करे।

४—शिरको किसी वस्तुके सहारे रखके काउसग्ग करे।

५—जैसे भीलनी नग्न अवस्थामें गुह्यस्थानपर आगे हाथ रखे वैसे दोनों हाथ आगे रखके काउसग्ग करे।

६—नई परणी (विवाही) हुई कुलवधूकी तरह मस्तक नीचा करके काउसग्ग करे।

७—वेड़ी पहरे हुए मनुष्यकी तरह दोनों पैर चौड़े रखें अथवा दोनों पैर मिलाके खड़ा रहे।

काउसग्ग पार कर प्रगट लोगस्स कहनेके वाद एक खमासरण देकर इ० स० भगवन् वेसणो संदिसावुं कहना। फिर एक खमासण देकर 'ई० स० भ० वेसणो (आसना) ठाऊं' कहकर आसन विछावे। फिर एक खमासण देकर ई० स० भ० सिज्झाय

८—नाभीके ऊपर अथवा कमरके नीचे चोलपढ़ा पहरके- काउसग्ग करे।

(यह दोप मुनिराजकी अपेक्षासे लगता है क्योंकि साधू-को चोलपट्टा नाभीसे चार अङ्गुल नीचा पहरनेकी आज्ञा हैं।)

९—मच्छरादिके भयसे चद्दर चोलपट्टा वगैरहसे हृदय देश ढक कर काउसग्ग करे। (यह दोप भी साधु आश्रय है।)

१०—दोनों पगथली गुह्य देशमें संकोचकर दोनों पैर आगे विस्तारके [फैलायके] चैठकर काउसग्ग करे।

११—तमाम शरीर वस्त्रसे ढककर काउसग्ग करे। (क्योंकि दक्षिण हस्त खुला रखके काउसग्ग करना चाहिये। परन्तु स्त्री अथवा साध्वीके वास्ते यह दूपणरूप नही है। केवल पुरुपोंके वास्ते है।)

१२—घोड़ेकी तरह रजोहरण अथवा चखला आगे रखकर काउसग्ग करे।

१३—काक पक्षी (कउवा) की तरह नेत्र इधर उधर फेरे।

१४—पहरनेके अथवा ओढ़नेके वस्त्रका गूंछला करके दोनो पगोंके वीचमें रखके काउसग्ग करे।

१५—वारम्वार मस्तक घुमावे।

संदिसाऊं कहे फिर एक खमासण देकर इ० स० भ० सिज्झाय करूं इतना कहकर ८ नवकार पढ़ना (आठ नवकार करनेका अभिप्राय आठ कर्म्मोंका क्षय करना है) अगर शीतकालादि होवे तो एक खमासण देकर "ई० सं० भ० पांगरणो संदिसाउं कहकर फिर एक खमासण देकर ई० स० भ० पांगरणो पाथरुं

१६—गूंगेकी तरह हुं हुं शब्द करे।

१७—नवकार अथवा लोगस्सकी संख्या गिननेके वास्ते भ्रु कुटि अथवा नेत्रके पांपण अथवा अंगुली वेर वेर हिलावे।

१८—मदिरा (दारु) पीये हुए मनुष्यकी तरह वड़ वड़ शब्द करता हुआ काउसग्ग करे।

१६—विना सववके इधर उधर देखता हुआ तथा वन्दरकी तरह दोनों ओष्ठ (होंठ) हिलाता हुआ काउसग्ग करे।

यह १६ दोष कार्योत्सर्गके निवारण करके भव्यजीवोंको काउसग्ग करना चाहिये।

काउसग्गमें खड़े रहनेकी यह रीति है कि। दक्षिण हाथमें मुखवस्त्रिका और वाये हाथमें रजोहरण अथवा चरवला रखके पगके पंजे अगाड़ीसे आठ अंगुलके अन्तर पर रक्खे और एंड़ी चार अंगुलके अन्तरपर रखे मस्तक हृदयसे चार अंगल ऊंचा रखे। नासिकाके अग्रभाग पर दृष्टि स्थापन करके दोनों भुजा सीधो शरीरसे अलग रखके काउसग्ग करे। खड़ा होनेकी शक्ति न होय तो स्वस्तिकआसनसे बैठकर जीवनी (दाहिने) जंघापर जीवणे (दाहिने) हाथमें मुखपत्ति सहित

इतना कहकर ओढ़नेके वस्त्रको ओढ़ स्थिरतासे बैठ जाना। फिर स्वाध्याय अर्थात् पुस्तक पढ़ना अथवा जाप, ध्यान शक्ति होय तो करना चाहिये। सामायिकमें खुले मुखसे नहीं बोलना मुहपत्ति मुखके पास रखके पाठ आदि करनेका उपयोग रखना। सामायिकमें संसारसम्बन्धी वार्तालाप बिलकुल नहीं करना।

इति सामायक लेनेकी विधि।

अथ सामायिक पारनेकी विधि लिखते है।

अड़तालिस मिनिट पूरी हो जाय तब एक खमासण देकर "इ० स० भ० सामायिक पारवा मूहपत्ति पडिलेहुंजी"।

मुखवस्त्रीका उकडु बैठिके पडिलेहे

रक्खे। और डाबी (बाया) जंघा पर डावा हाथ रक्खे और चवलरा बीचमें डंडी रखकर सामने रक्खे। दृष्टि ऊपर लिखे अनुसार रखके कायोत्सर्ग करना चाहिये। और ओष्ठ हिलाये विना मनमें नवकार अथवा लोगस्स गुणना।

कार्योत्सर्गमें लोगस्सका पाठ "चंदेसुनिम्मलयरा" तक चिन्तवन करना कहा है।

इसमें इतना विशेष है कि कि कुस्वप्न दुःस्वप्नका काउसग्ग करनेके समय कदाचित् स्वप्नमें वीर्य स्खलित हुआ होय तो "सागरवरगंभीरा" तक चिन्तवन करे, और वीर्य स्खलित नहीं होकर फक्त स्त्रीसंभोगका ही स्वप्न हुआ होय तो "चंदेसु निम्मलयरा" तक ही चिन्तवन करे।

फिर एक खमासण देकर " इ० स० भं० सामायिक धारू' इतना कहकर एक खामासण देकर इ० स० भ० सामायिक पारोमि कहकर अर्धनम्र होकर जोवणो हाथ स्थापना चार्यजीके सामने उलटा करके तीन नवकार गुणे फिर काउसग्ग मुद्रासे ३२ दूपणका चिन्तवन करे।

"सामयिकको ३२ दूषण"

१० मनका दूषण।

(१) अविवेक दोष। सर्व क्रिया करे परन्तु विवेकशून्य होकर करे। मनमें ऐसा विचारे कि सामायिकसे कौन तरा है, इसमें क्या फल है।

२—यशोवांछादोष। सामायिक करके यशकी वांछा करना।

३—धनवांछादोष। सामयिक करनेसे मूझे धन मिलेगा।

४—गर्वदोष। सामायिक करके मनमें गर्व करे कि, मुझे लोग धर्मी कहेंगे, मैं कैसे सामायिक करता हूं मूर्ख लोग क्या समझें।

५० भयदोष। लोगोंसे डरता सामायिक करे, क्योंकि लोग अहेंगे कि जैनी हुआ है। बड़ा आदमी कहलाता हैं, परन्तु धर्म कुछ नहीं करता, इत्यादि लोकनिन्दासे डरकर सामायिक करे।

६—निदानदोष। सामायिक करके निदान करे कि इस सामायिकके फलसे मुझे धन, स्त्री, पुत्र, राज्य, भोग, देवपना,

चक्रवर्तिपना, वासुदेवपना आदिकी पदवी मिले। ऐसा निदान मनमें करे।

७—संशयदोष। क्या जाने सामायिकका फल होगा या नही, जिसको तत्वकी प्रतीत नहीं वह ऐसा विकल्प करता है।

८— कषायदोष। सामायिकमें कषाय अर्थात् क्रोध, मान माया, (कपट,) लोभ करना, किसीपर क्रोध करके तुरत सामायिकमें बैठ जाय।

६—अविनयदोष। विनयहीनतासे सामायिक करे।

१०—अबहुमानदोष। सामायिक बहुमान, भक्तिभाव उत्साहपूर्वक न करे;

(यह मनके दश दोष हुये।)

यह दश दोष वचनके हैं।

(१) कुबोलदोष। सामायिकमें कुवचन बोले।

(२) सहसात्कारदोष। सामायिकमें विना विचारे बोले।

(३) असदारोपण दोष। सामायिकमें दूसरेको खोटी सलाह देवे अथवा किसीपर झूंठे दोष लगावे।

(४) निर्पेक्षवाक्यदोष। सिद्धान्तकी अपेक्षा विना मति-कल्पनासे बोले।

(५) संक्षेपदोष। सूत्रपाठ संक्षेपसे अथवा न्यूनाधिक कहे।

(६) कलहदोष। किसीसे कलह करे, (सामायिकमें कोई

गाली देवे, उपसर्ग करे, कुवचन बोले तो भी समतासे सहन करना चाहिये)।

(७) विकथादोष! राजकथा, देशकथा, स्त्रीकथा, भोजन कथा, इन चारों प्रकारकी विकथा करे।

(८) हास्यदोष। किसीकी हंसी मसखरी करना अशुद्धपाठ दोष—अशुद्ध उच्चारण करे अथवा न्यूनाधिक उच्चारण करे, यद्वा तद्वा सूत्र पढ़े।

(१०) मुणमुणदोष। स्पष्ट अक्षर न बोले जैसा मच्छर मन मनाता है वैसेही गड़बड़ पाठ बोलना।

(यह वचनके दश दूषण हुये।)

काया (शरीर) के १२ दूषण लिखते हैं।

(१) दुष्टासनदोष। पगपर पग चढ़ाके अभिमानके आसन से बैठे, ऊंचे आसनपर बैठे।

(२) चलासनदोष। आसनपरसे बारम्बार चलायमान होवे, जगह २ आसन उठाता फिरे। कदाचित् रोगादि कारणोंसे स्वस्थ न बैठा जाय तो यतनासहित चरवलेसे ज़मीन पूंजकर उपयोग से शरीर हिलावे।

(३) चलदृष्टिदोष। मृगकी तरह दृष्टि को चारों तरफ़ बारम्बार फेरा करे। तात्पर्य यह है कि एकाग्रदृष्टि रखकर पठन, पाठन जाप आदि क्रिया करे!

(४) सावद्यक्रियादोष। सावद्य (पाप) क्रिया सामायिक में करे, पापक्रियाकी संज्ञा (इसारा करे।

(५) अवलम्बनदोष। भीत (दीवाल) स्थम्भ, पाट आदिका सहारा लेकर बैठे।

(६) आकुंचनप्रसारण दोष। विनाप्रयोजन हाथ पैर शरीरादि संकोच करे या लम्बे करे।

(७) आलस्यदोष। आलस मोड़े, अंगुलीके कटके निकाले, कमर टेढ़ी करे,

(८) मोटनदोष। अंगुली वग़ैरह टेढ़ी सीधी करे।

(९) मलदोष। खुजली करना (अगर खुजली आदि करनेकी ज़रूरत पड़े तो प्रथम चरवलेसे शरीरको पूंजकर फेर उपयोग सहित करे)

(१०) विमासणदोष। गाल वा शिरपर हाथ रखके बैठ जाय

(११) निद्रादोष। सामायिकमें निद्रा लेवे।

(१२) ढाकनदोष। तमाम शरीर ढककर स्त्रीकी तरह बैठ जाय। यह शरीरके बारह दूषण कहे। इन सब बत्तीस दूषणोंको निवारण करके सामायिक करना चाहिये।

इन दोषोंका चिन्तवन करके 'णमोअरिहंताणं' कहकर काउसग्ग पारु फिर गोड़ालिये बैठकर मस्तक चरवले पर रखके जीवणा हाथ मस्तकके नीचे रखके डावे हाथमें मुहपत्ती रखके सामायिक पारणे की गाथा कहे सो लिखते हैं।

सामायिक पारणेकी गाथा।

भयवं दसणणभद्दो, सुदंसणो थूलिभद्द वइरो य।
सफलीकय-गिह-चाया, साहू एवंविहा हुंति ॥१॥
साहूण वंदणेणं, नासइ पावं असंकिया भावा।
फासुअ-दाणे निज्जर अभिग्गहो नाणमाईसं ॥२॥
छउमत्थो मूढमणो कित्तियमित्तंपि संभरइ जीवो।
जं च न संभरामि अहं मिच्छामि दुक्कडं तस्स ॥३॥
जं जं मणेण चिंतिय-मसुहं वायाइ भासियं किंचि।
असुहं काएण कय मिच्छामि दुक्कडं तस्स ॥४॥
सामाइय-पोसह-संठियस्स जीवस्स जाइ जो कालो।
सो सफलो बोद्धव्वो सेसो संसारफलहेऊ ॥५॥

भगवान् दशार्णभद्र, सुदर्शन सेठ, स्थूलभद्र तथा वज्रमुनि जैसे मुनिराज होते हैं, जिन्होंने गृहत्याग को सफल बनाया है।

साधुजनों—पवित्रात्माओं को श्रद्धा सें, वन्दन करनेसें पाप का नाश होता है।

तथा शुद्धभावसे प्रासुकवस्तु (अचित्तद्रव्य-आहारादि) का दान

पात्रमुनिओंको देनेसे निर्जरा तथा सम्यग्ज्ञानादिकी प्राप्ति होती हैं ॥२॥

छद्मस्थ-(प्रमत्त, प्रमादी, मूढमन, मदान्धान्तःकरण,) जीव कुच्छ ही स्मरण कर सकता है (इसलिये) मैंने जो यहां पर धर्मसंबन्धी स्मरण नहीं किथा, उस विषयका मेरा दुष्कृत-पाप मिथ्या हो ॥ ३ ॥

जो २ मनसे अशुभ चिन्तन किया हो; और वाणीसे भी जो २ अशुभ बोला हो; तथा काया (शरीर)से अशुभ क्रियायें जो २ की हों; इन सब विषय का मेरा दुष्कृत मिथ्या हो ॥ ४ ॥

सामायिक तथा पौषध (पोसह) में बैठे हुए प्राणिका जो समय व्यतीत होता (गुज़रता) है, वह समस्त सफल जानना चाहिये; अवशिष्ट समय—इससे जो बचा समय, (व्यापारका संबन्धी) संसार का हेतु है—जन्ममरणलक्षण वाले संसाररूपफलका हेतु है—अर्थात् संसारके बढ़ानेवाला है ॥५॥

सामायिक विधें लीधुं विधें कीधु विधि करतां जो कोइ अविधि आशातना लगी होय, दश मनका दश वचनका बारह कायाका एवं प्रकारे बत्तीस दूषण-मांहि जो कोई दूषण लगो होय, सो मन वचन काया करके मिच्छामि दुक्कडं ।

यह गाथा कहकर सामायिक पारे यहाँ इतना विशेष है कि सामायिकमें किसी प्रकारसे जीवविराधना हुई होय अथवा

सचित्त (हरी-सजीव) वस्तुका तथा विजली आदिका संघट्टा (संघर्षण) हुवा होय तो इरियावही कहकर एक लोगस्स अथवा चार नवकारका काउसग्ग करके प्रगट लोगस्स कहे फिर ३२ दोषोंका चिन्तवन करके सामायिक पारे अन्यथा इरियावही करनेकी आवश्यकता नहीं है। क्यों कि सामायिकमें १०० हाथ तक उपयोगसहित प्रमार्ज़नपूर्वक जानेकी आज्ञा है, विशेष गमनागमन होनेसे इरियावहि करना योग्य है।

एक सामायिक सम्पूर्ण होनेके पश्चात् दूसरा सामायिक लेनेकी इच्छा हो तो मुखवस्त्रिका पडिलेह कर 'समायिक दंड उच्चरावो जी' यहाँ तक पूर्वोक्त क्रिया करके तीन वेर सामायिक दंड उच्चारण करके स्वाध्याय ४८ मिनिट तक करें। यह प्रक्रिया केवल 'जावनियमं पज्जुवासामि' का पाठ उच्चारण करने वालेके लिये है।

॥ इति प्रभातसामायिकविधि समाप्त ॥



जिन मन्दिर की आशातना ।

(१) श्री जिन मन्दिरकी आसातना (त्रुटि) लिखते हैं । प्रथम जघन्य १० आसातनायें (दोष) यह है ।

१ पान सुपारी खावे, २ पाणी पीवे, ३ भोजन करे, ४ पगरखी जोड़ा पहिने, ५ स्त्रीसम्भोग करे, ६ निद्रा लेवे, ७ कफ, थूक गोरे ८ पिसाव करे, ६ बड़ी शंका (दस्त) करे, १० जूआ खेले ।

मध्यम चालीस आसातना लिखते हैं ।

१ लघुनीत करे, २ बड़ी नीत करें, ३ जूता मोजा पहरे, ४ जल पीवे, ५ भोजन करे, ६ निन्द्रा लेवे, ७ मैथुन सेवे, ८ ताम्बूल खावे, ९ थूक कफ डाले, १० जूआ खेले, ११ जूआ देखे, १२ विकथा करे १३ अभिमानके आसनसे बैठे, १४ पैर पसारे, १५ विवाद करे,, १६ हंसी मसखरी करे, १७ ईर्षा करे, १८ ऊंचे आसनपर बैठे, १९ शरीरकी विभूषा करे, २० शिरपर छत्र रक्खे, २१ तलवार आदि शस्त्र रक्खे, २२ मुकुट धारण करे, २३ चामर ढलावे, २४ स्त्रीसे कामभोगसम्बन्धी विलासवार्ता करे, २५ धरणा लगावे, २६ क्रीडा करे, २७ मुखकोश विना पूजा करे २८ मैले शरीर तथा मैले वस्त्रोंसे पूजन करे ।

(२९) पूजन करते मनकी चपलता रक्खे ।

(३०) शरीरके भोगके सचित द्रव्यों सहित प्रवेश करे ।

(३१) अमूपणादि अचित्त वस्तु शरीरसे उतारके जावे।

(३२) उत्तरासन एक वस्त्रका करके न जावे।

(३३) प्रभूको देखकर हाथ न जोड़े।

(३४) शक्ति होते हुये भी पूजा न करे।

(३५) खराब पुष्पोंसे पूजा करे (३६) पूजन निरादरसे करे (३७) प्रभु प्रतिमाके निन्दकको न हटावे। (३८) मंदिरके द्रव्यादि को संभाल कर न रक्खे। (३९) शक्ति होते हुये भी सवारी पर जावे।

(४०) आचार्य गुरुआदिसे पहिले चैतवन्दन करे।

उत्कृष्ट चौरासी आसातना।

(१) खखारा डाले (२) जुआदि क्रीडा करे (३) कलह करे (४) धनुष्य आदि युद्धविद्या सीखे (५) कुल्ला करे (६) तांम्बूल खावे (७) तम्बोलका गूदा डाले (८) गाली गुप्ता (कुवाच्य) देवे (९) लघुनीति बड़ीनीति करे (१०) शरीरादि अंग धोवे (११) केश संवारे। (१२) नख कटावे (१३) रूधिर डाले (१४) सूखडी प्रमुख खावे (१५) गूमडे वगैरहकी त्वचा उतारे (१६) औपधी खाकर पित्त गेरे (१७) वमन करे (१८) दांत गेरे (१९) हाथ पैर मले (२०) घोड़ादि बांधे (२१) दांतका मैल गेरे (२२) आंखका मैल (गीड) गेरे (२३) नखका मैल गेरे (२४) गालका मैल गेरे (२५) नाकका मैल गेरे (२६) शरीरका मैल गेरे (२७) शिरका मैल गेरे (२८) कानका मैल गेरे (२९) भूतादिका मंत्र साधे व राजकाजसंम्बन्धी वि-

चार करे (३०) विवाहसंबन्धी पंचायत करे (३१) व्यापार सम्बन्धी हिसाब करे (३२) राजका कार्य करे अथवा वोट (राय) देवे। (३३) घरका द्रव्य जेवरादि रक्खे। (३४) दुष्टासनसे बैठे (३५) गौवरके छाणे थापे। (३६) वस्त्र सुकावे (३७) दाल वगैरह दले, पीसे (३८) पापड़ बेर सुकावे (३९) वड़ी करे सुकावे (४०) राजा या लेनदारके भयसे छिपे (४१) पुत्रादि सम्बन्धियोंके मरनेसे रोवे। (४२) राजकथा, देशकथा भोजनकथा स्त्रीकथा करे (४३) जेवर घड़े अथवा शस्त्र बनावे (४४) गाय भैंस बैलादि रक्खे (४५) ठंड दूर करनेको अग्नि तापे (४६) धान्यादि रांधे (पकावे) (४७) रूपया मोहर परखे (४८) निस्सहि विधिसे न कहे। (४९) छत्र (५०) पगरखी, मोजा (५१) शस्त्र (५२) चामर यह चार वस्तु बाहर न रखके भीतर लावे (५३) मन एकाग्र न करे (५४) तैलादि का मर्दन करे (५५) शरीरके भोगादिके फूलोंका त्याग न करे(५६) हार, मुद्रा, कुंडलादि आभूषण उतारके आवे (५७) प्रभूको देखके हाथ न जोड़े। (५८) एक वस्त्रका उत्तरासन न करे (५९) मुकुट मस्तक पर रखे (६०) शिरपर वस्त्र लपेटा रखे (६१) फूलका सेहरा रक्खे (६२) नारिअल आदिका छिलका गेरे (६३) गेंद खेले (६४ जुहार (प्रणाम) मुजरा सलाम अदि करे (६५) भांड चेष्टा करे (६६) तिरस्कार वास्ते रे तूं शब्द कहे (६७) लहना वास्ते धरणा देवे (६८) संग्राम करे (६९) मस्तकके केश सुकावे (७०) पालखी मार कर बैठे। (७१) पावड़ी पहने (७२) पग पसारे (७३) शरीर दबावे (७४) शरीर धोकर कीचड़ करे (७५) शरीरकी धूल झाड़े

(७६) मैथुन करे (७७) जूं गेरे (७८) भोजन करे (७९) गुह्य चिन्ह ढ़ककर न वैठे (८०) वैद्क का काम करे (८१) क्रय विक्रयका व्यापार करे (८२) शय्या करके सोये (८३) पानी पीनेके वास्ते रक्खे (८४) स्नान करनेके वास्ते जगह बनावे

इस मूजब ८४ आसातना निवारण करके मन्दिरमें दर्शन पूजा करना चाहिये।

॥ इति जिन मन्दिर की आशातना समाप्ता ॥



॥ जिनेंद्राय: नम: ॥

गुरु महाराज की

तेतीस आशातनाएं

निम्न लेखानुसार दूर करनी।



१—गुरु महाराजके आगे बैठना,

२—गुरु महाराजके आगे खड़े रहना,

३—गुरु महाराजके आगे चलना,

४—गुरुजीके पीछे नजदीकमें बैठना

५—गुरुजीके पीछे खड़ा रहना,

६—गुरुजीके आगे होकर चलना,

७—गुरुजीके दोनों तरफ पासमें बैठना,

८—गुरुजीकी बराबरीसे चलना,

९—गुरुजीके चुलिका अनुकरण करते चलना,

(इन नव आशातनाओं का यह अभिप्राय हैं कि बैठते, खड़े रहते, छींक उबासी और अधोवायु का सरना अथवा श्वासका स्पर्श होना यानी जिस तरह बैठे खड़े रहनेसे थूंक श्वासादिकका स्पर्श नहीं होसके उस तरह बैठना और खड़ा रहना उचित है। आगे अथवा बराबर बैठनेसे गुरुजीकी बड़ाई किस रीतिसे

मानी जावे ॥ इसलिये बराबर अथवा आगे बैठनेसे आशातना होती है ॥)

१०—आपसे विशेष पुरुषोंके साथ थंडिल (शौचस्थान) जावे और उनसे आगे आवे ॥

११—गुरुजीके साथ बाहरसे आये हुए शिष्य गुरुजीके पहिले मार्ग के दोष आलोवे ॥

१२—रात्रिमें गुरुजी बुलावे और पूछे कि कौन सोया और कौन जागता है और आप जागता हो तदपि "मैं जागता हूं" ऐसा न कहे ॥

१३—उपाश्रयमें श्रावक आवें उससे गुरुजी या आपसे अधिक पदवालेके बोलानेके पूर्व बातचीत प्रारंभ करे ॥ (तो उसमें गुरु हो तो गुरुको और उच्चपद धारी हो तो उनकी अशातना होती है ।

१४—आहार लाकर आपसे बड़े हो उन साधुजीको आहार बिना बतलाये दूसरे साधुओंको बतलावे ।

१५—आहारादिक का निमंत्रण गुरुजी को नहीं कर दूसरों क पहिले करे ॥

१६—गुरुजी को बिना पूछे दूसरे साधुओं को आहार का निमं-त्रण देवे ।

१७—गुरुजोको बिना पूछे दूसरोंको आहार देवे ।

१८—सरस और स्वादिष्ट आहार आप भोगमें लावे और गुरुजी को न देवे ।

१९—गुरुजीके वचन सुनकर उनका जवाव न देवे।

२०—गुरुजीके समान कोई माननीय पुरुष वातचीत करते, वुलाये तो भी कठोर वचनसे जवाव देवे या उनकी अवज्ञा करे।

२१—गुरुजीने अपने पास वुलाया तो भी आसन पर वैठ कर ही जवाव देवे किन्तु पास न आवे।

२२-गुरुजीने पूछा तो भी आसन पर ही वैठे ही वोले कि क्या आज्ञा है

२३—गुरुजी अथवा वड़ों को साथ असभ्यतासे संवोधन करके वुलावे।

२४—गुरुजी वोले उसी तरह अविनयसे उत्तर देवे॥

२५ - जव गुरुजी किसी साधु साध्वी अथवा रोगीकी सार संभालके लिये आज्ञा देवे तव गुरुजीको कहे कि आपही सार संभाल कीजिये ऐसे कटु वचन वोलकर अवज्ञा करे।

२६—जव गुरुजी धर्मकथा कहे तव शून्यचित्तसे सुने, कदाचित ध्यानसे सुने तो सुनकर उनका मान न करे (अहा! गुरुजी आप शास्त्रके परमार्थ क्या वतलाते हो धन्य है) ऐसा कहना चाहिये किन्तु न कहे।

२७—गुरुजी जव धर्म उपदेश देवे तव वोले कि इसका अर्थ आप वरावर नहीं करते हो अथवा आपको इसका अर्थ करना नहीं आता है।

२८—गुरूजी जो कथा फरमाते हो उस कथाको वीच ही में भंग करके आप दूसरों को अथवा सुननेवालोंको कथा कहे और समझावे॥

२६—गुरुजी जो कथा फरमाते होवे उस कथासे गुरुजीको और सबसज्जनोंको आनन्द प्राप्त हो रहा हो और चित्त लीन होगया हो ऐसा जानते हुए भी शिष्य बोले कि महाराज जी? गोचरी का समय होगया हैं इसलिये कथा को छोड़िये नही तो गोचरी मिलनी दुर्लभ हो जायगी। (इस तरहसे वचन कहनेसे चढती धारा हो वह टूट जाय और कथाका भङ्ग हो जाये इससे अशातना लगती है) ॥

३०—गुरुजीने जो जो अर्थ बतलाये हों वही अर्थ व्याख्यान बंद होनेके बाद शिष्य सबोंके सामने अपनी बुद्धिकी निपुणता दिखानेके लिये व्याख्यान देवे ।

३१—गुरुजीके संथारेका या गुरुजीके पावोंसे पाव का स्पर्श हो जाय तो शीघ्र क्षमा न माँगे याने खमाये ।

३२—गुरुजीके आसन पर खड़ा रहे बैठे और सोता रहे ॥

३३—गुरुजीसे ऊंचे अथवा बराबर आसन पर बैठे।

इस तरह गुरुजी महाराज की जो तेतीस आशातनाए हैं वे नही करनी चाहिये। और कोई दूसरा करता हो तो उसको दूर करनेकी कोशिश करनी चाहिये। ये अशातनाए जब तक आपमें अहङ्कार दशा होंगी तब तक तो होवेगी और जब अहङ्कार दूर हो जायगा तब निश्चय रूपसे सहजही में आशातना दूर हो जावेगी। सारांश यह की गुरुजीसे मैं बहुत ज्ञानी हूं ऐसा अहङ्कार हो तो हृदयसे बाहर निकाल देना चाहिये ॥

क्योंकि यदि आप में गुरुजीसे विशेष ज्ञान होवे तो भी वह

गुरुजी की ही कृपासे हुआ है तो जिनकी कृपासे वह ज्ञान उपार्जन हुआ है उनकी बड़ाई रखने का ख्याल मनमें नही आवे तो तब तक वह ज्ञान पढ़ा हो तो भी स्पर्श ज्ञान नही हुआ।

जब स्पर्श ज्ञान प्राप्त हुआ होतो उपकारी का उपकार जीवन पर्यन्त कदापि नहीं भूलना चाहिये और यदि कदापि वह उपकार हृदय रूपी मन्दिरसे भूल गया हो तो स्मरण कर आत्माकी भूल शीघ्रतासे सुधार लेनी उचित है और गुरुजी की बड़ाई मनमें लाकर विनयपूर्वक आशातना दूर करनी चाहिये यही आत्मा का हितकारी और मोक्षमार्गका दिग्दर्शन कराने वाला है॥

गुरु महाराजको वंदना करनेके ३२ दोष निवारना चाहिये

गुरु महाराजको द्वादशावर्त्त वंदन करनेसे जो बत्तीस दोष लगते हैं सो विस्तारपूर्वक अथवा खुलासा रीतिसे प्रवचन सारोद्धारजी के पत्र २९ में लिखा हुआ है वे नीचे लिखानुसार दोष निवारण कर वंदन करना चाहिये॥

१—अणाढ़ादोष-उसे कहते हैं कि आदररहित गुरु वन्दना करना यानें आपको वन्दन करने का हर्ष तो नहीं है परन्तु परम्परासे यह रीति चली आई है इसलिये करे, नहीं कि वन्दना करनेसे महानिर्जरा होगी, मुझको ऐसे महान् पुरुषों को वन्दन करनेका मौका हाथ लगा है ऐसा भाव लाकर के वन्दना करना चाहिये और जब तक ऐसा भाव हृदय में न आवे तब तक गुरुजी का सत्कार यानी आदर नहीं हुआ,

इसलिये महान् हर्ष और आदर सहित वन्दन करना कि अणाढ़ा दोष दूर हो जावे।

२—स्तब्धदोष-उसे कहते हैं कि द्रव्यस्तब्ध याने गुरूजी को वन्दन करने का भाव है किन्तु शूलादिक रोगों की पीड़ा से, चित्त अस्वस्थ हो जाने से चित्त प्रसन्न न हो, भाव स्तब्ध याने द्रव्यसे क्रिया करे परन्तु अन्तरङ्ग का उपयोग वन्दनमें लवलेश मात्र भी न हो। इसलिये ये दोनों द्रव्य और भाव स्तब्धों को दूर करके गुरु महाराज को वन्दन करना चाहिये।

३—प्रवीधदोष-उसे कहते हैं कि जैसे किराया देकर किसी भी मनुष्य को काम पर लगावे किन्तु सिर्फ मजदूरी के पैसे की तरफ ही निगाह रख कर काम करे और जैसे तैसे काम करके चला जाय, वैसे वन्दन करते व्यवस्था रहित वन्दन पूर्ण किये बिना चला जावे।

४—सपिडदोष-उसे कहते हैं कि आचार्यजी, उपाध्यायजी और समस्त साधुओं को एक साथ वन्दन करे।

५—टोलकदोष-उसे कहते हैं कि जैसे टीडी दल इधर से उधर फिरता है एक स्थान में कायम नहीं होता वैसे ही वन्दन के समय आगे पीछे फिरा करना।

६—अङ्कुशदोष-यह है कि जैसे महावत अङ्कुश की सहायता से हाथी को अपनी मर्जी के मुताबिक चलाता है वैसे ही गुरु जी को चलावे यानी आचार्यजी खड़े हो बैठे हो या कोई

कार्य में हो तो उनका कपड़ा पकड़ कर आसन पर बैठा कर वन्दन करना।

७—कच्छपदोष-वह है कि वन्दन करने के समय कछुवे की तरह आगे पीछे दृष्टि फिराता हुआ वन्दन करे याने गुरु महाराज की ओर दृष्टि न रख कर चारों तरफ नज़र फिरावे।

८—मच्छदोष उसे कहते हैं कि जैसे मच्छर स्थिर न रहे वैसे ही शरीर की अस्थिरता से-विचित्र प्रकार की चेष्टा सहित वन्दन करे।

९—मनप्रदुष्टदोष-उसे कहते हैं कि आपके या दूसरे के लिये गुरुजीकी मारफत कार्य सफलीभूत न होने से मनमें राग-द्वेष होने पर भी वन्दन करे।

१०—वेदिकाबंधदोष-उसे कहते हैं कि दोनों हाथ घुटनों के ऊपर रखकर या दोनों हाथोंके बीच दोनों या एक घुटना रख कर वन्दन करे—दोनों हाथ गोद में रखकर वन्दन करे इस तरह पाँच प्रकार वेदिकादोष हैं।

११—भयदोष-उसे कहते हैं कि वन्दना करने के समय हृदय में भय रखे कि नहीं वन्दना करूंगा तो गुरुजी को द्वेष होगा और मुझको बाहर निकाल देवेंगे, ऐसे भय अथवा डर के मारे वन्दना करे।

१२—भजन्तदोष-उसे कहते हैं कि दूसरे साधु आचार्यजी को भजते हैं और मैं न आऊंगा तो अच्छा न लगेगा ऐसे विचार से भजे।

१३—मित्रदोप-वह हैं कि गुरु को वन्दना करूंगा तो गुरु के साथ मित्रता हो जायगी ऐसा सोच कर वन्दन करे ।

१४—मागारवदोप-उसे कहते हैं कि मुझको समाचारी जानकर या जानने से लोग पण्डित कह देंगे और विनीत जानेंगे इस हेतु वन्दन करे ।

१५—कारणदोप-उसे कहते हैं कि गुरुजी को वन्दन करूंगा तो गुरुजी के पास से कम्बलवस्त्रादि इच्छित वस्तु मिलेगी ।

१६—स्तैन्यदोप-वह है कि गुरुजी को चुपकी से वन्दना करे-प्रगट में न करे, कारण कि सबों के सन्मुख वन्दो करूंगा तो मैं उन्हीं से छोटा कहा जाऊंगा और गुरु को वड़ाई होगी, ऐसा सोच कर चोर की तरह वन्दना करे

१७—प्रत्यनीकदोप-वह है कि गुरुजी आहार पानी करते हों उस समय वन्दना करे ।

१८—दृष्टदोप-उसे कहते हैं कि कषाय से पूर्ण गुरु को वदन करे और गुरु को कषाय पैदा करावे ।

१९—तर्जितदोप-वह है कि गुरुजी तो क्रोध या प्रसाद भी नहीं करते हैं, काष्ट को पुतली के जैसे या अंगुली से करके शिर पर या अंगुली-शिर से तर्जनी करनी ।

२०—शठदोप-उसे कहते हैं कि गुरुजी को वन्दना करूंगा तो गुरुजी अगर श्रावक मेरा विश्वास करेंगे तो मेरा इच्छित कार्य सिद्ध होगा ।

२१—हीलनादोष-उसे कहते हैं कि हे आर्य, हे श्रेष्ठ! हे वाचक!

मैं तुमको प्रणाम करता हूं ऐसे वचन गुरुजी को बोलता हुआ यानी अवहेलना करता हुआ वन्दना करे।

२२—कुञ्चितदोष-उसे कहते हैं कि वन्दना करते २ बीच में विकथा करे।

२३—अन्तरित दोष-उसे कहते हैं कि साधुप्रमुख को अन्तर से रह कर या अंधेरे में रह करके वन्दना करे कि जिससे कोई दिखाई न दे।

२४—व्यङ्गदोष-उसे कहते हैं कि गुरु का सम्मुखपना छोड़कर दक्षिण की ओर वन्दना करे।

२५—करदोष उसे कहते हैं कि जैसे राजा का कर देना हो वैसे मन में विचार करे कि श्रीभगवान् ने कहा है उससे वन्दना करनी पड़ेगी, यह एक प्रकारका अनुचित बोझा है उसे उतारना ही होगा ऐसी धारणा कर वन्दना करे।

२६—मोचनदोष-उसे कहते हैं कि संसार के कर से मुक्त होवे, किन्तु अरिहन्तजी के कर से मुक्त न होवे उससे वन्दना करनी पड़ेगी केवल यही सोच कर वन्दना करे।

२७—अश्लिष्ट अनाश्लिष्ट दोष-उसे कहते हैं कि वंदना करते रजोहरण को हाथ से स्पर्शे, परन्तु हाथ माथे से न छुवे, मस्तक को स्पर्शे. परन्तु रजोहरण को न स्पर्शे, रजोहरण को हाथ न लगावे और मस्तक को भी न लगावे।

२८—न्यूनदोष-उसे कहते हैं कि वन्दना के कमती अक्षर बोले या बहुत जल्दी से वन्दन कर लेवे, उससे अवनमनादिक

कम करे या न करे, प्रमाद से करके ज्यों त्यों करे उसमें न्यूनता होवे वह न्यून दोष है।

२९—चूलिका दोष-उसे कहते हैं कि वन्दना करने के बाद ऊंचे अथवा जोर के शब्द से "मत्थएण वन्दामि" कहे।

३०—मूकदोष-उसे कहते हैं कि गूंगे की तरह मुंह से शब्द बोले बिना वन्दना करे।

३१—ढड्ढरदोष-उसे कहते हैं कि बड़े स्वर से वन्दन का सूत्र उच्चारण करे।

३२—चुडलिका दोष-उसे कहते हैं कि रजोहरण पकड़ कर आड़ा होना यानी इधर उधर फिरता हुआ वन्दे।

इस तरह बत्तीस दोष वन्दना के निवारण करके गुरुजी को वन्दना करना ही विनय है। गुरुजी की आशातना करके विनय करना सब प्रकार अनुचित हैं। इसलिये जहाँ तक बन सके वहाँ तक गुरुजी की आशातना नहीं करनी चाहिये। गुरुजी की निन्दा अवहेलना करने से, गुरुजी का नाम छिपाने से, गुरुजी को पीड़ा यानी मन दुखित करने से ज्ञानावरणीय कर्म बंधता है, ऐसा पहिले कर्मग्रन्थ में कहा है, इसलिये गुरुजी की आशातना नहीं होवे वैसा करना न्यायोचित है, और जहां तक मन, वचन और काया से भक्ति हो सके वहाँ तक भक्ति आदरसहित करनी चाहिये ऐसा करने से ज्ञानावरणीय कर्म की महा निर्जरा होवे।

क्षमा प्रार्थना।



उपरोक्त ग्रन्थ लिखनेमें मतिदोष सेवा प्रमाद से श्रीजिनाज्ञासे विपरीत लिखा गया हो तो मन, वचन, काया करके त्रिकरण शुद्धि से छओं (अरिहंत, सिद्ध, मुनि, सम्यक्दृष्टि देव, गुरु, स्वआत्मा) साक्षि करके चतुर्विध संघके समक्ष मिच्छादुष्कृत देता हूं और जिनाज्ञा प्रमाण करता हूं।

॥ ॐ शान्ति शान्ति शान्ति ॥

॥ इति जिनदर्शन, पूजन,
सामायिक विधि प्रकाश ग्रन्थ सम्पूर्ण ॥